RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 04 प्रकाशन तिथि : 25 मार्च कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 अप्रेल 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

सुधि लेत सदा सब जीवन्ह की, अतिसय करुणा उरधारी है।
प्रतिपाल करो विनही बदले, अस कौन पिता महतारी है।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी – स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 अप्रेल, 2021

वर्ष : 57 अंक : 04

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क – एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय – सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम	✍ श्री जयदयालजी गोयन्दका	07
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	13
☞ अवगुणों को मिटाने का उपाय	✍ स्वामी रामसुखदासजी महाराज	15
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	18
☞ महान् क्रान्तिकारी-राव गोपालसिंह-खरवा	✍ डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा	25
☞ सृजन-संहार की मूर्ति	✍ मृगालिनी साराभाई	28
☞ निज को न बनाया तो......!	✍ स्व. श्री सूरतसिंह कालवा	30
☞ चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	✍ श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

श्री क्षत्रिय युवक संघ की हीरक जयन्ती :

22 दिसम्बर, 2020 से श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना का 75वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ है। इस हीरक जयन्ती वर्ष में स्थान-स्थान पर अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हो रहे हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से संघ की विचारधारा, कार्यप्रणाली आदि की जानकारी तो दी ही जा रही है, साथ ही 22 दिसम्बर, 2021 को होने वाले मुख्य हीरक जयन्ती कार्यक्रम की सूचना देकर उसमें सम्मिलित होने का आग्रह भी किया जा रहा है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण शिविर पूर्व में जहाँ सम्पन्न हुए हैं, वह स्थल हमारे लिये पवित्र तीर्थ की तरह है। अत: उन स्थानों पर जाकर प्रेरणा लेने तथा स्थानीय समाज बन्धुओं से चर्चा करने का नाम तीर्थ दर्शन कार्यक्रम दिया गया है। इसके अतिरिक्त स्नेह मिलन कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जा रहा है। कहीं महापुरुषों की जयन्ती मनाई जा रही है तो कहीं जन प्रतिनिधियों की गोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है।

मोरचन्द, चेखला, गरोड़िया, गोधावी, सोला भागवत विद्यापीठ, नरोड़ा, निधराड़, सरखेज अवाणिया, करबुण, नारोली, वाघासण, सवराखा, नारी, थराद, वरतेज, दांतीवाड़ा, शेराऊ, ताखुवा, भड़ोदर, भापी, जसका, सुंधिया, मछावा, मुखड़ोजी गोहिल आश्रम आदि गाँवों में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। काणेटी गाँव में अनेक शिविर हो चुके हैं, उन सभी स्थलों पर स्वंयसेवक पहुँचे।

मुरलीपुरा (जयपुर), कनकपुरा (जयपुर), बाढ मोचिंगपुरा, प्रेमनगर (जयपुर), डीडवाना, नेणिया, जोजावर, गुढा आशकरण, बासनी, विरोल, कारोला, सिवाड़ा, पावटा (जालौर), माडपुर, जंजीला, कंवलाद, बेलासर, केरडा, मंडला, चरली, रेवदर, गेलावास, सुरावा, पांचला, कितासर, धीरदेसर, रामदेवरा, फलसूंड, पादरू, सिराणा, चेण्डा, वायद, भाप तालाब (बान्दरा, बाड़मेर) आदि स्थानों पर तीर्थ दर्शन अथवा स्नेह मिलन कार्यक्रम आयोजित हो चुके हैं। प्रत्येक रविवार को विभिन्न संभागों में कार्यक्रमों के आयोजनों का कार्यक्रम स्थानीय स्तर तैयार हो रहे हैं।

कुछ जगह संभागीय स्तर पर बैठकें चल रही हैं तो कुछ जगह प्रांतीय स्तर पर बैठकें हो रही हैं। पूना (महाराष्ट्र), जोगीदास का गाँव, सैला, केसरपुरा (बायतु) में बालकों के शिविर सम्पन्न हो चुके हैं। बालोतरा में बालिका शिविर सम्पन्न हो चुका है। सालासर में क्षात्र पुरुषों फाउण्डेशन के कार्यकर्ताओं हेतु शिविर सम्पन्न हुआ।

परमार-शासक भोज की जयन्ती मनाई गई, राव बीदाजी की जयन्ती मनाई गई। कल्ला रायमलोत का बलिदान दिवस मनाय गया। वीर महारावल दूदा तिलोकसी का बलिदान दिवस देगराय मंदिर में मनाया जाएगा, इस संदर्भ में भी कार्यक्रम आयोजित हो रहे हैं।

क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के माध्यम से अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए हैं। आर्थिक पिछड़ा आरक्षण की विसंगतियों को दूर करने हेतु प्रदेश भर में प्रशासनिक अधिकारियों तथा विधायकों को ज्ञापन सौंपे गये जो मुख्यमंत्री के लिए थे। राजस्थान के निवासियों को वरीयता दिए जाने हेतु भी निवेदन था। पुरुषार्थ फाउण्डेशन की जिला स्तरीय मीटिंग भी कई जिलों में सम्पन्न हुई। प्रतिभा खोज परीक्षा का भी आयोजन किया गया। जन प्रतिनिधियों की कार्यशाला के भी आयोजन बाड़मेर, पाली, जोधपुर, नागौर आदि जिलों के हो चुके हैं। इनमें पंचायतराज में निर्वाचित सरपंच, पंचायत समिति सदस्य, जिला परिषद सदस्य, प्रधान, जिला प्रमुख आदि को आमंत्रित किए जाकर समाज के लिए जिम्मेदारी निभाने हेतु तथा परस्पर सामञ्जस्य बनाने व सहयोग करने बाबत विचार दिए गये। साथ ही उन्हें हीरक जयन्ती के कार्यक्रमों में भागीदारी निभाने का आग्रह भी किया गया।

❑

चलता रहे मेरा संघ

{विशेष मिलन शिविर माणकलाव में दिनांक 11.6.2004 को संघप्रमुख माननीय श्री भगवानसिंह जी द्वारा स्वागत उद्‌बोधन का संक्षेप।}

पूर्व जन्मों की हमारी कमाई कहें, या परमपिता परमेश्वर की कृपा कहें-हम एक उद्देश्य से, एक मार्ग व एक नेतृत्व से जुड़े हुए हैं। हम साथ रहने के लिए वचन बद्ध हैं। हमारी साथ रहने की मन में थी, आज भी है और इसीलिए शिविर-शाखा में आते-मिलते-बिछुड़ते रहते हैं। मिलकर बिछुड़ना और बिछुड़कर मिलना, यह प्रक्रिया सतत् चलती रहती है। कोई समान तत्व हमारे अन्दर विराजमान है जो बिछुड़कर मिलने को विवश करता है। एकता की खोज में ज्ञानी, विद्वान, प्रबुद्ध जन जो इस संसार में तपस्या कर रहे हैं, वह एकता किस प्रकार की हो? बहुत से लोग इस संसार को बनाने वाले परमेश्वर से एकता का प्रयास करते हैं। न्यूनाधिक रूप से सभी एकता की ओर बढ रहे हैं। संभवतया जान नहीं पाते पर परवश हो बढ रहे हैं एकता की ओर। संसार परमेश्वर की माया है, जो इस माया में उलझता है वह परमेश्वर को नहीं पाता और जो ईश्वर को पाने का प्रयास करता है वह इस माया में नहीं उलझता।

हमें परिवारों में ऐसा सोच नहीं मिला पर श्री क्षत्रिय युवक संघ में आने के बाद स्वाभाविक रूप से सामाजिक भाव पनपा है और अब चाहे-अनचाहे हम उसी ओर बढ रहे हैं। बार-बार बिछुड़ कर भी हम यहाँ एक होने का प्रयस करते हैं। कोई ऐसा आकर्षण है जो खींचता है। लहरों को किनारा फेंक देता है। लहरों का उद्देश्य तो किनारे तक जाना ही है, फिर किनारा उन्हें फेंकता क्यों है? फेंकने के बाद भी लहरें पुनः किनारे की ओर ही बढती हैं। न लहरें थकती हैं, न किनारा थकता। यही बात हम पर लागू होती है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की इसी खोज में हम बह रहे हैं। हम में से अधिकांश लोग न तो जानते हैं, न चिन्तन करते हैं, पर संघ के जिस सामाजिक भाव से हम ओतप्रोत हैं, वही हमको पुनरपि यहाँ ले आता है। यहाँ आने के बाद एक रस आता है। उस रस को अनेकों बार चखकर भी संसार में जाकर भूल जाते हैं। अनुभूति लेकर भी टूटने की क्रिया में चलते हैं। श्री क्षत्रिय युवक संघ जोड़ने का पूरा प्रयास है तभी तो इसे संपूर्ण योग मार्ग कहा है। हमारे इस परिवार को देख लें तो तपस्या की कोई आवश्यकता नहीं-वसुधैव कुटुम्बकम।

हमारा यह परिवार श्रेष्ठ परिवार है। जहाँ एक दूसरे के प्रति शिकायत न रहे, वही श्रेष्ठ परिवार। पिता-पुत्र, पति-पत्नी को कोई शिकायत नहीं, परस्पर सभी शिकायत रहित हों तो वह परिवार संपूर्ण योग को पाकर परमेश्वर की ओर बढ जाता है। परमेश्वर का बनाया हुआ कुछ भी नेष्ठ नहीं है, अच्छा-बुरा सभी श्रेष्ठ है अतः शिकायत क्यों? कोई अपने को श्रेष्ठ बताने का प्रयास करेगा, वही टूटेगा। शिकायत न हो तो परमेश्वर का अवतरण होता है, शिकायत है तो आचरणहीन ज्ञानी है। ऐसा भक्त भी पाखण्डी है। हमारा यह परिवार श्री क्षत्रिय युवक संघ एक परिवार है, जो इस भेद को समझ लेगा वह समस्त संसार को परिवार समझ लेगा। किसी को क्षत्रिय युवक संघ में आकर भी शिकायत है तो उसका ज्ञान, उसकी कर्मठता, उसकी भक्ति सभी उसके लिये भार है। हमें परस्पर किसी भी प्रकार की शिकायत है तो संघ बना ही नहीं। संगठन या उद्देश्य के प्रति शिकायत, परस्पर शिकायत रुकावट बतलाती है। श्री क्षत्रिय युवक संघ को जो परिवार नहीं देखते, केवल संस्था मानते हैं, वे बहुत बड़ी भूल में हैं। फिर भी जैसे हैं, संघ उनको अपना मानता है। आप आएँ-न-आएँ, आप अपना उत्तरदायित्व समझें-न समझें संघ आपको कभी नहीं भूलता। यह एक तरफा व्यापार दो तरफा हो जाए तो संगठन हो जाता है। हजारों लोग एक परिवार के और किसी को किसी से शिकायत न हो, यह कल्पनातीत है। इस सत्य को स्वीकार लें कि टकराहट चलती रहेगी पर परिवार है अतः शिकायत बन्द हो जानी चाहिए।

समाज या जाति के आगे बढने की बात नहीं, यह

बात संपूर्ण राष्ट्र, मानवता से जुड़ी हुई है अत: अपनत्व की विशालता नहीं होगी तो संघ नहीं बनेगा। प्रारम्भ में जो बात कही गई, उसी को पकड़ कर बैठे रहें तो यह विकास नहीं है। शिकायत कोई हो तो उसे दूर करने का यत्न करें। आप भले हैं, आपके दिल में संघ के प्रति कृतज्ञता है, उसी से प्रभावित होकर आते हैं और यदि नया नहीं पाते, संदेश नहीं महसूस करते तो जो स्वाभाविक सोच था, वही बना रहता है। यहाँ पर किसी निर्देश की आवश्यकता नहीं, हम सभी परस्पर प्यार से बंधे हैं। हजार लोगों को बुलावो पर वही आते हैं जो क्षत्रिय युवक संघ के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं। कृतज्ञता का भाव ही हमें लाता है। जिनमें कृतज्ञता का भाव है, वे ही आए हैं। इसीलिए कहता हूँ-आप बड़े भले हैं। कृतज्ञता आप में थी, इसीलिए आप यहाँ तक पहुँचे हैं। परवाना दीवाना होकर शमा पर आता है, फिर दीपशिखा से शिकायत कैसी? हमारे भाव हमें यहाँ तक लाए। श्री क्षत्रिय युवक संघ की कृपा ही नहीं, परमेश्वर की कृपा तो बराबर बरसती है। पर जो उसके अभिमुख होते हैं वे ही कृपा की वर्षा का लाभ ले सकते हैं, आप पर कृपा हुई, आपने कृतज्ञता अनुभव की अत: आप भले हैं। इस परिवार को बनाये रखने के लिये हमारी शिकायतें यदि कोई हैं तो कम होनी शुरू हो जाएँ और बन्द हो जाएँ।

दुख पाकर की गई सेवा भी फलदायक नहीं, दुख पाकर प्रार्थना भी फलदायक नहीं।काम करने में आनन्द नहीं आए वह काम करने से क्या लाभ? कार्य में आनन्द आना प्रारम्भ हो जाता है तो शिकायतें नष्ट हो जाती हैं। आपकी श्री क्षत्रिय युवक संघ से शिकायत हो चाहे, पर संघ को कोई शिकायत नहीं है। आप जैसे हैं, वैसे ही स्वीकार्य हैं। अधिकांश की शिकायतें केवल नादानी है। इस नादानी को छोड़ो। परमेश्वर को बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं। शिकायत रहित होकर ही सत्संग का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस दुनिया में शिकायत है तो आखिर इसके बाहर जाएंगे कहाँ। अत: शिकायत बन्द करो। जहाँ हो, वहीं से संघ कार्य प्रारम्भ करो। संघ का विश्वास है कि जो इस कृतज्ञता के भाव से आया है, वह गलत नहीं करेगा। आपको भी संघ के प्रति ऐसा ही विश्वास हो, उस विश्वास को पुष्ट करने के लिये ही बुलाते हैं। शिकायत करने वाले शान्त चित्त नहीं होते अत: परमेश्वर का मार्ग नहीं पकड़ सकते। गीता का ज्ञान युद्ध के मैदान में दिया गया फिर भी पूर्ण नीरवता से सम्पन्न हुआ, कोई शिकायत नहीं। गीता के अनुसार कुमार्गी की हत्या करके भी अहिंसा का ही पाठ है। हम उस मार्ग के राही हैं। वही हमारा आदर्श है अत: शिकायत बन्द करके आगे बढें। शिकायत के अवसर पैदा होते हैं क्योंकि संसार ऐसा ही है पर स्वयं को बदल दें तो शिकायत नहीं रहेगी। दूसरा नहीं बदल सकता, स्वयं को ही बदलना है। भगवान भी संसार को सुधार नहीं पाए, केवल सुधार का मार्ग बताया। हम स्वयं के अन्दर देखने लग जाएँ तो हिमालय में जाने की आवश्यकता नहीं, घर में ही प्रारम्भ हो जाएगा। वरना एकान्त हिमालय में भी नहीं मिलता।

प्यार की ऐसी सारी बात ईश्वर के अनुगृह से कहता हूँ। आपको बुलाता हूँ, आपको मुसीबत में डालता हूँ पर शिकायत बन्द नहीं करेंगे तब तक बुलाता रहूँगा। आप मुझे रास्ते पर ले आएँगे पर आपको कौन लाएगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ का उद्देश्य मेरे जीवन का उद्देश्य, यह हमने माना पर जिस मील के पत्थर पर खड़े थे, वहीं खड़े रहे तो सड़ांध ही रहेगी, अत: चलिए, आगे बढिए। आपको खोज-खोज कर माला में पिरोया गया, यह आप ध्यान में रखें। आप स्वयं सब शिकायत बन्द कर दें यह सम्भव है, पर कोई अन्य आपकी शिकायतें दूर कर दें यह सम्भव नहीं। क्षत्रिय जाति को आपसे आशा है। आपके कार्य में ईश्वर का अवतरण चाहते हैं तो शिकायतें बन्द कर दें। इस शिविर का एकमात्र उद्देश्य है कि हमारी शिकायतें बन्द हों, तभी आपका स्वागत है। अन्यथा लस्टम-पस्टम चलेगा। आपसे श्रेष्ठ संसार में अन्य कोई नहीं, आप ही कर सकते हैं यह कार्य। शिकायतें बन्द होते ही आपकी, समाज की, राष्ट्र की, मानवता की आशाएँ पूरी हो जाएंगी। शिविर के पूरे कार्यक्रम के मूल में एक ही बात है कि शिकायत बन्द हो जाए। ❑

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

– जयदयाल जी गोयन्दका

आदर्श गुण

रघुकुल-भूषण भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के समान मर्यादा-संरक्षक आज तक दूसरा कोई नहीं हुआ-यह कहना कोई अतियुक्ति नहीं है। श्रीराम साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा थे। वे धर्म की रक्षा और लोकों के उद्धार के लिये ही अवतीर्ण हुए थे। किन्तु उन्होंने सदा सबके सामने अपने को एक सदाचारी आदर्श मनुष्य ही सिद्ध करने की चेष्टा की। उनके आदर्श ......-चरित्रों के पढ़ने, सुनने और स्मरण करने से हृदय में शान्त पवित्र भावों की लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनका प्रत्येक कर्म अनुकरण करने योग्य है। श्रीराम सद्गुणों के समुद्र थे। सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, नि:स्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादा-संरक्षण, एक पत्नीव्रत, प्रजा-रञ्जकता, ब्राह्मण-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृ-प्रेम, मैत्री, शरणागत-वत्सलता, सरलता, व्यवहार-कुशलता, प्रतिज्ञा-पालन, साधु रक्षण, दुष्टदलन, निर्वरता, लोकप्रियता, अपिशुनता, बहुज्ञता, धर्मज्ञता, धर्म-परायणता, पवित्रता आदि-आदि सभी गुणों का मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम में पूर्ण विकास हुआ था। संसार में इतने महान् गुण एक व्यक्ति में कहीं नहीं पाये जाते। वाल्मीकीय रामायण के बाल और अयोध्या काण्डों के आदि में भगवान् राम के गुणों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है, उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुरुष, सेवक-प्रजा आदि के साथ उनका जैसा असाधारण आदर्श बर्ताव था, उसे स्मरण करते ही मन आनन्दमग्न हो जाता है। श्रीराम जैसी लोकप्रियता कहीं देखने में नहीं आती। उनकी लीला के समय ऐसा कोई भी प्राणी नहीं था, जो श्रीराम के प्रेमपूर्ण मधुर बर्ताव से मुग्ध न हो गया हो।

कैकेयी का राम के साथ अप्रिय एवं कठोर बर्ताव भगवान की इच्छा और देवताओं की प्रेरणा से लोक-हितार्थ हुआ था। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कैकेयी को श्रीराम प्रिय नहीं थे क्योंकि जिस समय मन्थरा ने रानी कैकेयी को राम के विरुद्ध उकसाने की चेष्टा की है, उस समय स्वयं कैकेयी ने ही उसे यह उत्तर दिया है-

धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति।।
भ्रातॄन् भृत्याश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।
संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्।।

* * *

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु।।
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
मन्यते हि यथाऽऽत्मानं तथा भ्रातृंस्तु राघवः।।

(वा.रा., 2 ।8। 14-15, 18-19)

'कुब्जे! राम धर्म के ज्ञाता, गुणवान, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ सत्यवादी और पवित्र होने के साथ ही महाराज के बड़े पुत्र हैं; .....युवराज होनेका अधिकार उन्हीं को है। वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और नौकरों का पिता की भाँति पालन करेंगे। भला, उनके अभिषेक की बात सुनकर तू इतना जल क्यों रही है? मेरे लिये जैसे भरत आदर के पात्र हैं, वैसे ही-बल्कि उससे भी बढ़कर राम हैं। वे कौसल्या से भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं। यदि राम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत को ही मिला समझ; क्योंकि रामचन्द्र अपने भाइयों को अपने ही समान समझते हैं।' कैसा सुन्दर वात्सल्य-प्रेम है! श्रीराम पर कैकेयी का कितना प्रेम, विश्वास और और भरोसा था। इससे यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि कैकेयी का कठोर बर्ताव उसके स्वभाव से नहीं हुआ, भगवदिच्छा से हुआ था।

श्रीराम की मातृ-भक्ति

श्रीराम की मातृ-भक्ति बड़ी ही आदर्श थी। उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है; अत: यहाँ संकेत मात्र ही लिखा जाता है-

माता कौशल्या तथा अन्य माताओं की तो बात ही क्या है, माता कैकेयी के द्वारा कठोर-से-कठोर व्यवहार किया जाने पर .... उसके प्रति श्रीराम का व्यवहार तो सदा भक्ति और सम्मान से पूर्ण ही रहा। माता कौसल्या के महल से लौटते समय कुपित हुए भाई लक्ष्मण से उन्होंने स्वयं कहा है-

यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यति।
माता न: सा यथा न स्यात् सविशङ्का तथा कुरु।।
तस्या: शङ्कामयं दु:खं मुहूर्तमपि नोत्सहे।
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेक्षितुम्।।
न बुद्धिपूर्वं नाबुद्धं स्मरामीह कदाचन।
मातणां वा पितुर्वाहं कृतमल्पं च विप्रियम्।।

(वा.रा., 2 । 22, 6-8 ।)

'लक्ष्मण! मेरे राज्याभिषेक के कारण जिनके चित्त संताप हो रहा है, उस हमारी माता कैकेयी को जिससे ऊपर किसी तरह का संदेह न हो, वही काम करो। उसके मन में सन्देह के कारण उत्पन्न हुए दु:ख की मैं एक मुहूर्त के लिये भी उपेक्षा नहीं कर सकता। मैंने कभी जान-बूझकर या अनजान में माताओं या पिताजी का कभी थोड़ा भी अप्रिय कार्य किया हो-ऐसा याद नहीं पड़ता।'

इनके सिवा और भी बहुत से उदाहरण श्रीराम की माता भक्ति के मिलते हैं। चित्रकूट से लौटते समय भरत से भी राम ने कहा था कि 'भाई भरत! माता कैकेयी ने तुम्हारे लिये कामना से या राज्य लोभ से यह जो कुछ किया है, उसको मन में न लाना। उसके साथ सदा वैसा ही बर्ताव करना, जैसा अपनी पूजनीया माता के साथ करना चाहिये।' उसी समय शत्रुघ्न से भी कहा है-'भाई! मैं तुम्हें अपनी और सीता की शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम कभी माता कैकेयी पर क्रोध न करना, सदा उनकी सेवा ही करते रहना।' वन में रहते समय एक बार लक्ष्मण ने कैकेयी की निन्दा की, उस पर आपने यह कहा-भाई! माता कैकेयी की तुमको निन्दा नहीं करनी चाहिये-इत्यादि। इससे यह पता चलता है कि श्रीराम को अपनी अन्य माताओं के प्रति कैसी श्रद्धा और भक्ति रही होगी। राजा दशरथ की अन्य रानियों ने उनके वन जाते समय विलाप करते हुए कहा था-

कृत्येवचोदित: पिता सर्वस्यान्त: पुरस्य च।
गतिश्च शरणं चासीत् स रामोऽद्य प्रवत्स्यति।।
कौसल्यायां यथा युक्तो जनन्यां वर्तते सदा।
तथैव वर्ततेऽस्मासु जन्मप्रभृति राघव:।।

(वा.रा. 2 । 20 । 2-3)

'जो राम किसी काम-काज के विषय में पिता के कुछ न कहने पर भी सारे अन्त:पुर की गति और आश्रय थे, वे ही आज वन में जा रहे हैं। वे जन्म से ही जैसी सावधानी से अपनी माता कौसल्या के साथ बर्ताव करते थे, उसी प्रकार हम सबके साथ भी करते थे।

इससे बढ़कर श्रीराम की मातृ-भक्ति का प्रमाण और क्या होगा!

पितृ-भक्ति

इसी प्रकार श्रीराम की पितृ-भक्ति भी बड़ी अद्‌भुत थी। रामायण पढ़ने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि पिता का आज्ञापालन करने के लिये श्रीराम के मन में कितना उत्साह, साहस और दृढ़ निश्चय था। माता कैकेयी से बातचीत करते समय श्रीराम कहते हैं-

अहं हि वचनाद् यज्ञ: पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।।

(वा.रा., 2 । 18 । 28-29)

न ह्यतो धर्माचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।।

(वा.रा., 2 । 19 । 22)

'मैं महाराजा के कहने से आग में भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष का पान कर सकता हूँ और समुद्र में भी गिर सकता हूँ, क्योंकि जैसी पिता की सेवा और उनकी आज्ञा का पालन करना है, इससे बढ़कर संसार में दूसरा कोई धर्म नहीं है।'

इसी तरह के वहाँ और भी बहुत से वचन मिलते हैं। उसके बाद माता कौसल्या से भी उन्होंने कहा है-

नास्ति शक्ति: पितृर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम्।।

(वा.रा., 2 । 21 ।। 30)

'मैं चरणों में सिर रखकर आपसे प्रसन्न होने के

लिये प्रार्थना करता हूँ। मुझ में पिता के वचन टालने की शक्ति नहीं है। अत: मैं वन को ही जाना चाहता हूँ।''

इसके सिवा लक्ष्मण, भरत और ऋषियों-मुनियों से बात करते समय भी राम ने पितृ-भक्ति के विषय में बहुत कुछ कहा है। श्रीरामचन्द्र के बालचरित्र का संक्षेप में वर्णन करते हुए भी यह बात कही गयी है कि श्रीराम सदा अपने पिता की सेवा में लगे रहते थे।

एक पत्नी व्रत

श्रीराम का एक पत्नी व्रत भी बड़ा ही आदर्श था। श्रीराम ने स्वप्न में कभी श्री जानकी जी के सिवा दूसरी स्त्री का वरण नहीं किया। सीता को वनवास देने के बाद यज्ञ में स्त्री की आवश्यकता होने पर भी उन्होंने सीता की ही स्वर्णमयी मूर्ति से काम चलाया। यदि वे चाहते तो कम-से-कम उस समय तो दूसरा विवाह कर ही सकते थे। उससे संसार में भी उनकी कोई अपकीर्ति नहीं होती, परन्तु भगवान तो मर्यादापुरुषोत्तम ठहरे। उनको तो यह बात चरितार्थ करके दिखानी थी कि जिस प्रकार स्त्री के लिये पातिव्रत्य का विधान है, उसी तरह पुरुष के लिये भी एक पत्नी व्रत परमावश्यक है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध भोग भोगने के लिये नहीं, अपितु धर्माचरण के लिये है।

भगवान् श्रीराम का सीता के साथ कितना प्रेम था, इसका कुछ दिग्दर्शन सीता-हरण के बाद का प्रसङ्ग पढ़ने से हो सकता है। श्रीराम परम वीर, धीर और सहिष्णु होते हुए भी उस समय एक साधारण विरहोन्मत पागलकी भाँति पशु-पक्षी, वृक्ष-लता और पर्वतों से सीता का पता पूछते और नाना प्रकार के विलाप करते हुए एक वन से दूसरे वन में भटकते फिरते हैं। कहीं-कहीं तो शोक के विह्वल और मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं एवं 'हा सीते! हा सीते!' पुकार उठते हैं। उस समय का वर्णन बड़ा ही करुणापूर्ण और हृदय विदारक है।

भ्रातृ-प्रेम

श्रीराम का भ्रातृ-प्रेम भी अतुलनीय था। लड़कपन से ही श्रीराम अपने भाइयों के साथ बड़ा प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। रामचन्द्रजी जो भी कोई उत्तम भोजन या वस्तु मिलती थी, उसे वे पहले अपने भाइयों को देकर पीछे स्वयं खाते या उपयोग में लाते थे। यद्यपि श्रीराम का सभी भाइयों के साथ समान भाव से ही पूर्ण प्रेम था, उनके मन में कोई भेद नहीं था, तथापि लक्ष्मण का श्रीराम के प्रति विशेष स्नेह था। वे थोड़ी देर के लिये भी श्रीराम से अलग रहना नहीं चाहते थे। श्रीराम का वियोग उनके लिये असह्य था, इसी कारण विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिये भी वे श्रीराम के साथ ही वन में गये। वहाँ राक्षसों का विनाश करके दोनों भाई जनकपुर में पहुँचे। धनुषभङ्ग हुआ। तदनन्तर विवाह की तैयारी हुई और चारों भाइयों का विवाह साथ-साथ ही हुआ। विवाह के बाद अयोध्या में आकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहे।

कुछ दिनों के बाद अपने मामा के साथ भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। श्रीराम और लक्ष्मण पिता के आज्ञानुसार प्रजा का कार्य करते रहे। श्रीराम के प्रेम भरे बर्ताव से, उनके गुण और स्वभाव से सभी नगर-निवासी और बाहर रहने वाले ब्राह्मणादि वर्णों के मनुष्य मुग्ध हो गये। फिर राजा दशरथ ने मुनि वशिष्ठ की आज्ञा और प्रजा की सम्मति से श्रीराम के राज्याभिषेक का निश्चय किया। राजा दशरथजी के मुख से अपने राज्याभिषेक की बात सुनकर श्रीराम माता कौसल्या के महल में आये। माता सुमित्रा और भाई लक्ष्मण भी वहाँ थे। उस समय श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहते हैं-

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता।।
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्य च त्वदर्थमभिकामये।।

(वा.रा., 2 । 4 । 43-44)

'लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वी का शासन करो। तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो। यह राजलक्ष्मी तुम्हें ही प्राप्त हुई है। सुमित्रानन्दन! तुम मनोवांछित भोग और राज्य-फल का उपभोग करो। मैं जीवन और राज्य भी तेरे लिये ही चाहता हूँ।'

इसके बाद इस लीला-नाटक का पट बदल गया। माता कैकेयी के इच्छानुसार राज्याभिषेक वन-गमन के रूप

में परिणत हो गया। सुमन्त के द्वारा बुलाये जाने पर जब श्रीराम महल में गये और माता कैकेयी से बातचीत करने पर उन्हें वरदान की बात मालूम हुई, तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। तदनन्तर वे माता कौसल्या से विदा माँगने गये, वहाँ भी बहुत बातें हुई; परन्तु श्रीराम ने एक भी शब्द भरत या कैकेयी के विरुद्ध नहीं कहा, बल्कि भरत की बड़ाई करते हुए माता को धैर्य दिया और कहा कि 'भरत मेरे ही समान आपकी सेवा करेगा।' उसी समय सीता को घर पर रहने के लिये समझाते हुए कहते हैं-

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यो च विशेषतः।
त्वया भरतशत्रुघ्नो प्राणैः प्रियतरो मम।।

(वा.रा., 2 । 26 । 33)

'सीते! मेरे भाई भरत-शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः तुम्हें उनको अपने भाई और पुत्र के समान या उससे भी बढ़कर प्रिय समझना चाहिये।'

वन-गमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण के मन में भारी दुःख और क्रोध हुआ। उसे भी श्रीराम ने नीति और धर्म से परिपूर्ण बहुत ही मधुर और कोमल वचनों से शान्त किया। फिर जब लक्ष्मण ने साथ चलने के लिये प्रार्थना की, उस समय उनको वहीं रहने के लिये समझाते हुए श्रीराम ने कहा है-

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे।।

(वा.रा., 2 । 31 । 10)

'लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्म-परायण, धीर और सन्मार्ग में स्थित रहने वाले हो। मुझे प्राणों के समान प्रिय, मेरे वश में रहने वाले, आज्ञापालक और सखा हो।

बहुत समझाने पर भी जब लक्ष्मण ने अपना प्रेमाग्रह नहीं छोड़ा, तब भगवान् ने उनको संतुष्ट करने के लिये अपने साथ ले जाना स्वीकार किया। वन में रहते समय भी श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकार से लक्ष्मण और सीता को सुख पहुँचाने तथा प्रसन्न रखने की चेष्टा किया करते थे।

भरत के सेना सहित चित्रकूट आने का समाचार पाकर जब श्रीराम-प्रेम के कारण लक्ष्मण क्षुब्ध होकर भरत के प्रति न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीराम ने भरत की प्रशंसा करते हुए कहा-

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते।।
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे।।
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म-तत् कुरुतां शिखी।।
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकेनाकुलितेन्द्रियः।
द्रष्टुमभ्यागतो ह्येष भरतो नान्यथाऽऽगतः।।

(वा.रा., 2 । 97 । 5-6, 8, 11)

'लक्ष्मण! मैं सच्चाई से अपने आयुध की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ काम और सारी पृथ्वी- सब कुछ तुम्हीं लोगों के लिये चाहता हूँ। लक्ष्मण! मैं राज्य को भी भाइयों के संग्रह और सुख के लिये ही चाहता हूँ। तथा मेरे विनयी भाई! भरत, तुम और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई भी सुख होता हो तो उसमें आग लग जाए। मैं समझता हूँ कि मेरे वन में आने की बात कान में पड़ते ही भरत का हृदय स्नेह से भर गया है, शोक से उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं; अतः वह मुझे देखने के लिये आ रहा है। उसके आने का कोई दूसरा कारण नहीं है।'

इसके सिवा वहाँ यह भी कहा है कि भरत मन से भी मेरे विपरीत आचरण नहीं कर सकता। यदि तुम्हें राज्य की इच्छा है तो मैं भरत से कहकर दिला दूँ।

लक्ष्मण का भरत के प्रति जो संदेह था, वह उपर्युक्त बातें सुनते ही नष्ट हो गया।

उसके बाद जब भरत आश्रम में पहुँचकर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में लोट गये, तब श्रीराम ने उनको देखा। अपने हाथों से उठाकर भरत का हृदय से आलिङ्गन किया। उनको गोद में बैठाकर और उनका सिर सूंघकर आदरपूर्वक सब समाचार पूछे और कहा-'भाई! तुम चीर और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये?' इस पर भरत ने श्रीराम को अयोध्या लौटाने की बहुत चेष्टा की। भरत तथा राम के प्रेम और बर्ताव को देखकर सारा समाज चकित हो गया। अन्त में जब भरत ने यह बात समझ ली कि श्रीराम अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेंगे, तब भरत ने श्रीराम से

उनकी पादुकाएँ माँगी। भरत की प्रार्थना स्वीकार करके श्रीराम ने पादुका देकर भरत को विदा कर दिया। वे उन पादुकाओं को आदरपूर्वक सिर पर धारण करके अयोध्या लौट आये। उन पादुकाओं का राज्याभिषेक करके उनके आज्ञानुसार राज्य का शासन करने लगे और स्वयं श्रीराम की ही भाँति मुनि-वेष धारण करके नन्दिग्राम में रहे।

उसके बाद सीता-हरण हुआ। लंका पर चढ़ाई की गयी। रावण के साथ भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। वहाँ एक दिन रावण के शक्ति-बाण से लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर श्रीराम ने जैसी विलाप-लीला की, उससे छोटे भाई लक्ष्मण पर उनका कितना प्रेम था, इसका पता चलता है। वहाँ श्रीराम ने कहा है-

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।।
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः।।

(वा.रा. 6 । 11 । 12-13)

'महा तेजस्वी लक्ष्मण ने वन आते समय जिस प्रकार मेरा अनुसरण किया था, उसी प्रकार अब मैं भी इसके साथ यमलोक जाऊँगा। यह सदा-सर्वदा ही मेरा प्रिय बन्धु और अनुयायी रहा है। हाय! कपट युद्ध करने वाले राक्षसों ने आज इसे इस अवस्था में पहुँचा दिया।'

जो भाई अपने लिये सब कुछ छोड़कर मरने को और सब तरह का कष्ट सहने को तैयार हो, उसके लिये चिन्ता और विलाप करना तो उचित ही है, परन्तु श्रीराम ने तो इस प्रसंग में विलाप की पराकाष्ठा दिखाकर भ्रातृ-प्रेम की बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है।

श्री हनुमानजी द्वारा संजीवनी-बूटी मँगवाकर सुषेण ने लक्ष्मण को स्वस्थ कर दिया। युद्ध में रावण मारा गया। लंका पर विजय हो गयी। भगवान राम अयोध्या लौटने के लिये तैयार हुए। उस समय विभीषण ने श्रीराम को बड़े आदर और प्रेम से विनयपूर्वक कुछ दिन रुकने के लिये कहा। तब श्रीरामचन्द्रजी ने उत्तर दिया-

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वंचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः।।
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
शिरसा याचितो यस्य वचनं न कृतं मया।।

(वा.रा., 6 । 121 । 18-19)

'राक्षसेश्वर! मैं तुम्हारी बात न मानूं-ऐसा कदापि सम्भव नहीं, परन्तु मेरा मन उस भाई भरत से मिलने के लिये छपटा रहा है जिसने चित्रकूट तक आकर मुझे लौटा ले जाने के लिये सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने जिसके वचनों को स्वीकार नहीं किया था। उस प्राण प्यारे भाई भरत से मिलने में मैं अब कैसे विलम्ब कर सकता हूँ।'- इत्यादि।

इसके बाद विमान में बैठकर श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब मित्रों के साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ भी भरत से मिलते समय उन्होंने अद्भुत भ्रातृ-प्रेम दिखलाया है।

राज्य करते समय श्रीराम हर एक कार्य में अपने भाइयों का परामर्श लिया करते थे। जिस किसी प्रकार से उनको सुख पहुँचाने और प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे।

एक समय लवणासुर के अत्याचार से घबराये हुये ऋषियों ने उसे मारने के लिये भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने सभा में प्रश्न किया कि 'लवणासुर को कौन मारेगा? किसके जिम्मे यह काम रखा जाए?' तुरन्त ही भरत ने उसे मारने के लिये उत्साह प्रकट किया। इस पर शत्रुघ्न ने कहा कि 'भरत जी ने तो और भी बहुत से काम किये हैं, आपके लिये भारी-से-भारी कष्ट सहन किये हैं, फिर भरतजी बड़े भी हैं। मुझ सेवक के रहते हुए यह परिश्रम इनको नहीं देना चाहिये। इस कार्य के लिये मुझे ही आज्ञा मिलनी चाहिए।' तब श्रीराम जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा कि 'वहाँ का राज्य भी तुम्हीं को भोगना पड़ेगा, मेरी आज्ञा का प्रतिवाद न करना।' शत्रुघ्न को राज्याभिषेक की बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने बहुत पश्चाताप किया। परन्तु रामाज्ञा समझकर उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार वचनों में बाँधकर उनकी इच्छा न रहने पर भी छोटे भाई को राज्य-सुख देना राम-सरीखे बड़े भाई का ही काम था।

इसके बाद प्रतिज्ञा में बँध जाने के कारण जब भाई लक्ष्मण का त्याग करना पड़ा, उस समय श्रीराम के लिये लक्ष्मण का वियोग असह्य हो गया। वहाँ पर कवि ने कहा है-

विसृज्य लक्ष्मणं रामो दु:खशोकसमन्वित:।
पुरोधसो मन्त्रिणश्च नैगमाश्चेदमब्रवीत्।।
अब राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम्।
अयोध्याया: पति वीरं ततो यास्याम्यहं वनम्।।
प्रवेशयत सम्भारान् मा भूत् कालात्ययो यथा।
अद्यैवाह गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम्।।

(वा.रा., 7 । 107 । 1-3)

'लक्ष्मण का त्याग करके श्रीराम दु:ख और शोक में निमग्न हो गये तथा पुरोहित, मंत्री और शास्त्रज्ञों को बुलाकर उनसे कहने लगे-'मैं आज ही धर्म पर प्रेम रखने वाले वीर भरत का अयोध्या के राज्य पर अभिषेक करूँगा और उसके बाद वन में जाऊँगा। शीघ्र ही समस्त सामग्रियाँ इकट्ठी की जाएँ। देरी न हो; क्योंकि मैं आज ही जिस जगह लक्ष्मण गया है, वहाँ जाना चाहता हूँ।'

इस पर भरत ने राज्य की निन्दा करते हुए कहा-'मैं आपके बिना पृथ्वी का राज्य तो क्या, कुछ भी नहीं चाहता; अत: मुझे भी साथ ही चलने की आज्ञ दीजिये।' इसके बाद भरत के कथनानुसार शत्रुघ्न भी मथुरा से बुलाया गया और मनुष्य-लीला का नाटक समाप्त करके अपने भाइयों सहित श्रीराम परमधाम पधार गये।

श्रीराम के भ्रातृ-प्रेम का यह केवल दिग्दर्शन मात्र है। भाइयों के लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाई भरत के राज्याभिषेक के प्रस्ताव से परमानन्दित होकर अपना हक छोड़ देना, जिसके कारण राज्याभिषेक रुका, उस भाई की माता कैकेयी पर पहले की भाँति ही भक्ति करना; मुक्तकण्ठ से भरत का गुणगान करना, भरत पर शंका और क्रोध करने पर लक्ष्मण को समझाना, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर प्राण त्याग करने के लिये तैयार हो जाना, समय-समय पर भाइयों को पवित्र शिक्षा देना, स्वार्थ छोड़कर सब पर प्रेम करना, शत्रुघ्न से जबर्दस्ती राज्य करवाना, लक्ष्मण के वियोग को न सहकर परमधाम में पधार जाना-इत्यादि श्रीराम के आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्यों से हम सबको यथायोग्य शिक्षा लेनी चाहिए।

(क्रमश:)

फार्म-4 (नियम-8)

1.	प्रकाशन स्थान	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
4.	प्रकाशक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
5.	सम्पादक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार व हिस्सेदार हों।	:	पूर्ण स्वामित्व-श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर

मैं एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

1-4-2021 **लक्ष्मणसिंह**

प्रकाशक

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

जिस तरह व्यक्ति समाज के विकास के लिए और समाज व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है, उसी तरह व्यक्ति और सिद्धान्त दोनों का परस्पर समन्वय अपरिहार्य है। जब भी सिद्धान्त और गुण को छोड़ व्यक्ति की पूजा शुरू हुई तो सिद्धान्त व गुण की पूजा शनैः शनैः समाप्त होने लगी और व्यक्तिवाद को बढावा मिला। व्यक्तिवाद पनपने से अहंभाव की भावना पनपेगी, जो समाज को पतन के रास्ते पर ले जायेगी। इसके उल्टा व्यक्ति की अवहेलना पर सिद्धान्त व गुण भी अव्यवहारिक है, फिर सिद्धान्त व गुण का कोई वर्जन नहीं रह जाता। इसलिए न तो व्यक्ति की अवहेलना की जा सकती और न सिद्धान्त व गुण की भी, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया–

''एक उलझन कई वर्षों से थी। व्यक्ति और समाज के बीच समन्वय का सिद्धान्त तो पहले से ही स्वीकार कर लिया गया था किन्तु मध्य ऐतिहासिक काल की वैयक्तिक अहंनिष्ठा ने और पूर्ववर्ती काल में व्यक्ति की स्वार्थ परायण मनोवृत्ति ने इस समाज को इतना झकझोर डाला था कि उसने छाछ को भी फूंक-फूँक कर पीने में श्रेय समझा। परिणाम यह हुआ कि उसने एक अर्द्धसत्य को पूर्ण सत्य मान लिया कि व्यक्ति सिद्धान्त के सामने कुछ भी नहीं है। सत्य यह है कि व्यक्ति और सिद्धान्त की तुलना नहीं हो सकती क्योंकि वे एक दूसरे के पूरक हैं। सिद्धान्तों और गुणों की कोई कमी नहीं है, किन्तु व्यक्ति उनके अवतार की भूमि है। वे उसी में परिष्कृत और समुन्नत होकर निखरा करते हैं। बिना व्यक्ति के गुण अव्यवहारिक और आश्रयहीन होता है इसलिए सिद्धान्त और गुण के नाम पर व्यक्ति की अवहेलना नहीं की जा सकती क्योंकि गुण और सिद्धान्त उसी की देन है और सिद्धान्तहीन व्यक्ति किसी भी हालत में बड़ा नहीं हो सकता चाहे उसने किसी भी परिवार, जाति अथवा देश में ही क्यों न जन्म लिया हो। इसलिए सिद्धान्त और व्यक्ति दोनों एक दूसरे के पूरक होने से दोनों का अपने-अपने स्थान पर अपना निजी महत्त्व है जो किसी हालत में कम नहीं हो सकता।''

साधक के पास तीन सत्ताएँ हैं-शरीर, मन और आत्मा। ये तीन सत्ताएँ ही साधना के साधन हैं। इनमें से किसी को भी गौण नहीं माना जा सकता और न किसी को अधिक महत्त्व ही दिया जा सकता । इन तीनों सत्ताओं का अपने-अपने स्थान पर अपना निजी महत्त्व है जो किसी हालत में कम नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में अपनी योजना बताते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा–

''मेरी एक और दिशा में भी दौड़ रही है। शक्ति के किसी एक पहलू से या उसके किसी एक स्वरूप से सर्वांगीण लक्ष्यवेध की कल्पना दुस्साध्य है इसलिए आध्यात्मिक शक्ति को किसी हालत में गौण नहीं माना जा सकता और उसके उपार्जन के लिए नवीन योग का सृजन करना पड़ेगा। न तो शारीरिक और मानसिक शक्तियों की कीमत पर आध्यात्मिक शक्ति को और न आध्यात्मिक शक्ति की कीमत पर शारीरिक व मानसिक शक्ति को, एक को अत्यधिक महत्त्व और दूसरे की उपेक्षा कर एक पक्षीय साधना करना चाहता और न इस प्रकार असंतुलन ही लाना चाहता। इससे मैं न केवल अपने कुटुम्ब में आत्मज्ञान ही लाना चाहता बल्कि भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी से हमारे सम्बन्धों को पवित्रतम बनाना चाहता हूँ। जब तक इस प्रकार का शिक्षण नहीं होता, चारित्रिक पवित्रता और नैतिक महानता का पाठ किसी जाति को नहीं पढाया जा सकता। केवल बौद्धिक संस्कार ही पर्याप्त नहीं हैं और न केवल भौतिक कर्म संस्कार ही, बल्कि ज्ञान-प्रदीप्त हृदय की भावना के बिना इन सबका पवित्र होना और सार्थक रूप से सक्रिय होना आकाश कुसुम के

सिवाय और कुछ नहीं है। शारीरिक साधना जिस प्रकार हमें भौतिक संगठन अर्थात् एकता प्रदान करती है और मानसिक साधना जिस प्रकार हमें मानसिक एकता अर्थात् विचार संगठन का लाभ प्रदान करती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक साधना हमें तात्विक एकता अर्थात् वह संगठन प्रदान करती है, जो हमारे अनुभव जगत का क्षेत्र है। शारीरिक और मानसिक जगत की भाँति जब हमें अनुभव जगत में भी एकता का बोध होगा, तब हमारी एकता का एक स्थायी और सुनिश्चित आधार बनेगा।''

समझ आते ही छोटी उम्र में ही पूज्य श्री तनसिंहजी जी ने क्षत्रिय समाज को ही नहीं, अपने चारों ओर फैले मानव समाज को गौर से देखा और गहन चिंतन कर मानव ही नहीं, प्राणी मात्र के कल्याण के लिए सेवक के रूप में अपने आपको प्रस्तुत कर परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की ''क्षत्रिय कुल में प्रभु जन्म दिया तो क्षत्रिय के हित में जीवन बिताऊँ'' और लग गये समाज सेवा में। पूज्य श्री के इस कार्य में जो भी सहयोगी रहे, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्होंने कहा-

''मेरे साधन ही मेरे साधक हैं। मेरे सहयोगी वर्ग का आज जो वर्तमान स्वरूप है, वह मेरे संतोष के लिए काफी है। हम परस्पर एक दूसरे से संतुष्ट हैं। वर्षों की उथल-पुथल के बाद हमने जिस स्वास्थ्य का लाभ अब लिया है, वह हमें इस जीवन को जीने की प्रेरणा देता है इसलिए मैं कह सकता हूँ कि सब अवगुणों के होते हुए भी मैं अपने सहयोगियों का अत्यन्त आभारी, कृतज्ञ और भक्त हूँ। हम एक दूसरे को परस्पर धोखा देने की कल्पना ही नहीं कर सकते। जो अपने साथी को धोखा दे सकता है वह अपने आपको धोखा देता है और जो अपने आपको धोखा देता है वह विभीषण की निकृष्टतम सन्तान है। मेरा लक्ष्य ही मेरा मित्र है और इसका साधक ही मेरा मित्र है और इसके सिवाय जतनी मित्रताएँ हैं उन्हें मैं पाखण्ड और दगाबाजी के आधुनिक तरीकों के सिवाय और कुछ नहीं मानता।

''जिन्होंने अपनी बुद्धि को अव्यभिचारिणी बनाया है उन्हें अपनी भक्ति-श्रृद्धा को भी अव्यभिचारिणी बनाना ही होगा। पवित्रता का मतलब भी एक और केवल एक तत्व की अखिलता है। दो तत्वों का समझौता या मेल व्यवहार के दृष्टिकोण से कितना ही नीति सम्मत और लोक संग्रहकारी हो किन्तु सिद्धान्तों के दृष्टिकोण से वह उतना ही अपवित्र और घिनौना है। मेरे अद्वितीय साधकों ने इस मार्ग पर भी अपने चरण बढाने शुरू कर दिये हैं। ज्यों-ज्यों ये चरण बढते हैं, त्यों-त्यों वह सामाजिक जीवन निखार ला रहा है और जीवन में पहली ही बार अनुभव करता हूँ कि हम निर्धन नहीं, सारा संसार भीख मांगता हुआ दिखाई देता है। निर्धन मैं तभी हूँ जब मेरे पास कुछ भी जमा बन्दी नहीं है और जब मेरे पास अपनों का सर्वस्व है तो उनका सर्वस्व ही मेरा धन है और मेरा सर्वस्व ही उनका धन है। फिर न तो मैं निर्धन हूँ और न मेरे सहयोगी। यह भिखारी की आत्मकथा नहीं एक कुबेर की आत्मकथा है। किन्तु मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ, कि कुबेर भी किसी दिन भिखारी बन सकता है। इसलिए भावनाओं के किसी भी आवेग में बहकर मेरे वर्तमान! मैं तुमसे तब तक पूर्ण संतोष नहीं कर सकता, जब तक तुम्हारे माध्यम से एक उज्ज्वल भविष्य की नींव नहीं डाल देता। इसलिए मेरे वर्तमान! मैं तुम्हारे प्रत्येक क्षण को व्यर्थ नहीं जाने देता और उससे एक महान भविष्य का सृजन करने के लिये दिन-रात परिश्रम कर रहा हूँ। जिस दिन मेरा भविष्य मूर्तिमान होगा उस दिन ही मैं कहूंगा-अब मै। भिखारी नहीं हूँ।'' **(क्रमशः)**

तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए उच्च और विशाल, उदार और उन्मुक्त और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिए और दूसरों के लिए भी बहुमूल्य हो जाएगा।

- श्री माँ

अवगुणों को मिटाने का उपाय

– स्वामी रामसुखदासजी महाराज

अपना अवगुण अपने को दीखने लग जाए, यह बहुत बढ़िया बात है। यह जितना स्पष्ट दीखेगा, उतना ही उस अवगुण के साथ सम्बन्ध-विच्छेद होगा-यह एक बड़े तत्त्व की बात है।

जब साधक को अपने में दोष दीखायी देता है, तब वह उससे घबराता है और दुःखी होता है कि क्या करूँ, मैं साधक कहलाता हूँ और दशा क्या है मेरी! तो यह दुःखी होना तो अच्छा है। परन्तु दोष मेरे में है-ऐसा मानना अच्छा नहीं। ध्यान दें, साधक के लिए बहुत बढ़िया बात है। जैसे आँख में लगा हुआ अंजन आँख को नहीं दीखता, पर दूसरी सब चीजें दीखती हैं, ऐसे ही जब तक अवगुण अपने भीतर रहता है, तब तक वह स्पष्ट नहीं दीखता, और जब अवगुण दीखने लगे, तब समझना चाहिये कि अब अवगुण मुझसे कुछ दूर हुआ है। अगर दूर न होता, तो दीखता कैसे? जितना स्पष्ट, साफ दीखे, उतना ही वह अपने से दूर जा रहा है। अत्यन्त दूर की वस्तु और अत्यन्त नजदीक की वस्तु-दोनों ही आँखों से नहीं दीखती। इसलिये अवगुण दीखने पर एक प्रसन्नता आनी चाहिये कि अब दोष मेरे में नहीं है; अब वह निकल रहा है, मिट रहा है। भूल तभी होती है, जब साधक उसे अपने में मान लेता है।

अपने में दोष को मान लेना बहुत बड़ी गलती है। अपने में मानने से दोष को सत्ता मिलती है, जबकि दोष की स्वतंत्र सत्ता है नहीं। आपकी अपनी स्वतंत्र सत्ता है और दोष को अपने में मानने से वह सत्ता दोष को मिलती रहती है। इससे वह दोष जीता ही रहता है, मरता नहीं; क्योंकि उसे आपका बल मिल गया।

दोष अपने में नहीं है-इसकी एक पहचान तो यह हो गयी कि दीखने लग गया। दूसरी पहचान यह है कि यदि अपने में दोष हो, तो उसे सब समय में दिखते रहना चाहिए। जब तक 'मैं हूँ' यह ज्ञान रहता है, तब तक उसके साथ-साथ दोष के रहने का भी ज्ञान होता है क्या? तो यह हरदम नहीं रहता। वह आता और जाता है। तो ऐसा आगन्तुक दोष अपने में कैसे हो सकता है? मैं बार-बार आप लोगों से कहता हूँ कि अपने में दोष को मानना बहुत बड़ी गलती है। इतनी बड़ी गलती है कि मानो दोष को निमंत्रण देकर बुलाते हैं कि हमारे यहाँ से कहीं चला न जाए। इस प्रकार आप दोष को आग्रह-पूर्वक, निमंत्रण देकर के रखते हैं। मूल में दोष अपने में नहीं है; क्योंकि :-

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।।

(मानस 7/116/1)

स्वयं ईश्वर का अंश, सदा रहने वाला, चेतन, ज्ञानस्वरूप है। यह अमल है अर्थात् इसमें मल नहीं है, और सहज सुख राशि है। सहज-स्वाभाविक ही सुख राशि होने पर भी जो यह दूसरे से (संयोगजन्य) सुख चाहता है, यह गलती करता है। जब दूसरे की तरफ से वृत्ति हटकर अपने स्वरूप में स्थिति होगी, तब उस सहज सुख का अनुभव होगा।

ना सुख काजी पंडिताँ ना सुख भूप भयाँ।
सुख सहजाँ ही आवसी तृष्णा रोग गयाँ।।

तो दूर से सुख की इच्छा, लोलुपता मिटने से ही सहज सुख प्रकट होगा, और सहज सुख से मन स्थिर होगा। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं-

''निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा' (मानस 7/89/4)

जब तक निज सुख नहीं मिलता, तब तक मन स्थिर नहीं होगा। जब निज सुख मिल जाएगा-अपने पास में ही सुख मिल जाएगा, तब वह मन कहीं जायेगा ही नहीं। इन्द्रियाँ भी अपने-आप वश में हो जाएँगी, स्थिर हो जाएँगी।

ये दोष पुष्ट होते हैं, एक तो अपने में दोष मानने

से, एक दूसरे का दोष देखने से, और दूसरे की दु:ख की परवाह न करने से। ध्यान दें, दूसरे के दु:ख की परवाह न करने से अपने में दोष स्थित होता है, कायम होता है। हर समय सावधान रहें कि कहीं मेरे द्वारा दूसरे को दु:ख तो नहीं हो रहा है? मेरे बोलने से, चलने से, बैठने से किसी को दु:ख या विक्षेप तो नहीं हो रहा है? मैं कोई क्रिया करता हूँ, तो उससे दूसरे को दु:ख तो नहीं हो रहा है? गीता में भगवान ने कहा है–

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणम्...सर्वभूतहिते रता:।। (गीता 5/25)

अर्थात् संपूर्ण प्राणियों के हित में रत हुए पुरुष निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। और,

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रता:।। (गीता 12/4)

अर्थात् संपूर्ण प्राणियों के हित में रत हुए पुरुष मुझे ही प्राप्त होते हैं। तो साधक निर्गुण-तत्त्व की प्राप्ति चाहे अथवा सगुण-तत्त्व की-उसके लिये किसी को दु:ख न देने की वृत्ति की बड़ी भारी आवश्यकता है। दूसरे को कष्ट, नष्ट, दु:ख देने वाले की तत्त्व में स्थित नहीं होती। संत-महात्माओं के सिद्धान्त हैं, गीता के सिद्धान्त हैं, भगवान के सिद्धान्त हैं, उनके विरुद्ध तो करना ही नहीं है, मृत्यु भले ही हो जाए। अन्यथा सिद्धान्त के विरुद्ध चलने से महान् अपराध होता है।

परमार्थ-पत्रावली पुस्तक में मैंने एक दिन एक पत्र देखा था। बहुत सुन्दर पत्र है वह। वह पत्र सेठजी ने भाईजी को लिखा था। बहुत पुराना पत्र है। उसमें लिखा है कि जैसे सुनार के पास सोना गलाने की कुठाली होती है, उसमें सोने को गलाकर उसे तपाते हैं तो सोने में जो मैल होती है, वह तो हुत जल्दी जल जाती है, परन्तु उसमें जो विजातीय धातु होती है, वह जल्दी नहीं जलती। ऐसे ही अन्त: करण में जो कूड़ा-करकट या मैल है, वह तो जल जाती है, परन्तु जो विजातीय धातु है-जैसे दूसरे को दु:ख देना, दूसरे के दोष देखना, शास्त्रों और सन्त-महात्माओं के विरुद्ध चलना आदि, इसका जलना कठिन हो जाएगा। साधन रूपी आग और सत्संग रूपी फूँक हरदम लगती रहेगी, तब वह जलता-जलता साफ हो जाएगा, स्वच्छ हो जाएगा। स्वरूप तो आपका स्वच्छ है, शुद्ध है ही।

दूसरों को अहित करने वाले का बड़ा भारी नुकसान होता है। दूसरों का हित करने वाले को गीता ने 'परमयोगी' माना है–

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दु:खं स योगी परमो मत:।।

(गीता 6/32)

तात्पर्य यह है कि जैसे कोई हमारी चीज ले जाए तो हमें बुरा लगता है, हमारे में दोष देखता है तो बुरा लगता है, हमारी निन्दा करता है तो बुरा लगता है, हमारा तिरस्कार करता है तो बुरा लगता है, हमारे मन के विरुद्ध करे तो बुरा लगता है-इस प्रकार 'आत्मौपम्येन' अपने शरीर की उपमा देकर सोचे कि दूसरे का ऐसा बर्ताव मुझे बुरा लगता है, तो वैसा बर्ताव हम किसी से नहीं करेंगे। भोगी आदमी तो इसका यह अर्थ लेता है कि जिससे अपने को सुख हो, वह काम करना है और जिससे अपने को दु:ख हो, वह काम नहीं करना है एवं बुरा बर्ताव करने वाले को खत्म करना है, हटाना है। परन्तु जो साधक होता है, उसमें यह सावधानी होती है कि ये जो बर्ताव मुझे बुरा लगता है, उसका अर्थ यह है कि ऐसा बर्ताव मैं किसी के साथ न करूँ, और जो दु:ख आता है, वह मेरी उन्नति के लिए आता है। दूसरे का आचरण हमें चुभता है, तो ऐसा आचरण दूसरों को भी चुभता है-पक्की बात है। जैसे शरीर में कहीं भी होने वाला दु:ख हमें नहीं सुहाता, वैसे ही दूसरों का दु:ख भी हमें नहीं सुहावे। यदि हमारे शरीर, मन, वाणी, भाव आदि से किसी भी जीव को दु:ख होता है तो जल्दी साधन की सिद्धि नहीं होती। जैसे अपने शरीर में होने वाला सुख हमें सुहाता है, वैसे ही दूसरों को होने वाला सुख भी हमें सुहाना चाहिये।

मनुष्य में यह बड़ी कमजोरी है कि वह भजन, ध्यान आदि को साधन मानता है, पर दूसरों के दु:ख की परवाह नहीं करता। यदि यही बात रहेगी तो वर्षों तक

सत्संग, साधन करने पर भी सुधार नहीं होगा। तो कम-से-कम दूसरे को दुःख न दें। सेवा करो तो अच्छी बात, सेवा न करो तो इतनी हानि नहीं, परन्तु दःख देने से बड़ी भारी हानि होती है। साधक इससे जितना बचेगा, उतनी ही अपने सुख की कामना दूर होगी। तो सुख भोग की वृत्ति तब दूर होगी, जब दूसरे का दुःख अपने को चुभने लगेगा, दुःख को दूर करना हमारा सुख हो जाएगा और दूसरे का दुःख हमारा दुःख हो जाएगा। जैसे अपना दुःख दूर करने के लिये मनुष्य की स्वतः चेष्टा होती है, वैसे ही दूसरे का दुःख दूर करने की स्वतः चेष्टा हो जाए, तो विषयेन्द्रिय संयोग के सुख भोग की रुचि मिट जाएगी। और जब तक दूसरे के दुःख की परवाह नहीं करते और अपना सुख लेते हैं, तब तक अपने सुख की वृत्ति मिटती नहीं। कोई कहे कि हम दुःख नहीं देते, फिर दूसरे का दुःख देखने की क्या जरूरत है? तो अपने में जो सुख-बुद्धि है, इसे मिटाने के लिये 'दूसरे का दुःख कैसे दूर हो' यह चिन्तन होगा, तो अपने सुख भोग की रुचि मिट जाएगी। इस वास्ते सन्तों के लक्षणों में लिख है-

'पर दुख दुख सुख सुख देखे पर' (मानस 7/37/1)

सुख भोग में भी दो चीज हैं, जिसे सन्तों ने कहीं कनक और कामिनी नाम से और कहीं दमड़ी और चमड़ी नाम से कहा है। पैसों की आसक्ति दमड़ी की और स्त्री की आसक्ति चमड़ी की। तो ये दोनों बहुत खराब हैं। तभी कहा कि-

माधोजी से मिलना कैसे होय।
सबल बैरी बसै घर भीतर, कनक कामिनी दोय।।

इन दोनों को गीता ने भोग और ऐश्वर्य नाम से कहा है-

भोगैश्यर्वप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।

(गीता 2/44)

भोग शब्द से स्त्री और ऐश्वर्य शब्द से पैसों का संग्रह लेना चाहिये। जिसकी इन दो में आसक्ति होती है, उसकी परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती कि परमात्मा को प्राप्त करना है। इनकी आसक्ति तब दूर होती है, जब दूसरे के हित का भाव हो जाए। आजकल हमारे देश में इसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। जैसे बीकानेर में कभी मतीरा न हो या कम पैदा हो, तो बहुत मन में आती है कि मतीरा नहीं हुआ। क्योंकि यहाँ वह होता है। जहाँ मतीरा पैदा होता ही नहीं, वहाँ मन में नहीं आती। ऐसे ही हमारे देश में, साधुओं और गृहस्थों में उपकारी आदमी बहुत हुए हैं। आज उनकी बड़ी भारी कमी होने से देश को उपकारी आदमियों की भूख लगी है।

हमारे कारण किसी को दुःख न हो-ऐसा विशेष ध्यान रखने से अपने सुख भोग की रुचि मिट जाएगी। जिसके मिटने से हमारी दोषयुक्त वृत्तियाँ सब मिट जाएगी। हम वृत्तियों की तरफ ही ख्याल करते हैं, उसके कारण की तरफ नहीं। यदि कारण की खोज करके उसे मिटा दें, तो सब दोष मिट जायें।

तीन प्रकार की निद्रा

- सोकर उठने के बाद जब मनुष्य तरोताजा अनुभव करता है तो उसको सात्विक निद्रा आई है।
- सोकर उठने के बाद जब मनुष्य दुख और बेचैनी अनुभव करता है तो उसको राजसिक निद्रा आई है।
- सोकर उठने के बाद जब मनुष्य को शरीर में भारी पन लगता हो, चित्त में ग्लानि होती हो और लगता हो जैसे सोया ही नहीं तो जानना चाहिए कि उसे तामसिकता ने घेरा था।

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–73

यह विकराल अग्नि सहस्र जिह्वा हो कलेवा माँगती है। तृप्त करूँ इसकी क्षुधा को अपनी माँ, बहिनों, पत्नी और पुत्रियों की आहुति देकर। पर मेरी यह छोटी मुन्नी तो केसरिया बाने को पकड़ लिपटी ही जा रही है। कैसे फैंकूं इसे आग में मैं? हा क्षात्र कर्म! तू कितना कठोर है। आज मैंने अनुभव किया कि ममता पर विजय पाना शत्रु पर विजय पाने से कितना कठिनतर है। हे साधको! समझो इस सत्य को अभी से।

समझ लो साधक सब, छोड़कर मन की ममता।
माँ, बहन, पत्नी को, कांपे न जौहर में होमते।।

हमने गत अवतरणों में साधक को उसके ध्येय मार्ग पर चलते हुए पार करनी पड़ती कसौटियों का अनुभव किया। संकटों, कष्टों, आफतों, प्राकृतिक आकर्षणों, विघ्नों, भौतिक प्रलोभनों, शारीरिक भोग-विलास के आकर्षणों और उसके बाद परिजनों, स्वजनों, स्नेहिजनों का भाव, स्नेह की उपेक्षा करके दृढ संकल्प और मनोबल के साथ निष्ठापूर्वक कर्तव्य पथ पर प्रयाण का निर्णय करके साधक आगे बढ रहा है।

गत चार अवतरणों में समर प्रयाण का आधार लेकर सामाजिक क्षेत्र के मैदान में प्रवेश करने से पहले लगाव, प्रेम, प्रणय-भाव पर पत्थर दिल रखकर विजय प्राप्त करनी पड़े, उस बात की निष्ठुरता का वास्तविक दर्शन कराया। अब इस अवतरण में समर प्रयाण की जगह जौहर को आधार बनाकर इस क्षेत्र में चलने वालों के सामने आने वाली कसौटियों का वर्णन प्रस्तुत किया है। केसरिया, जौहर जैसे शिखर रूप शब्द भाग्य से ही सुनने को मिलते हैं। अगर सुनने को मिल भी जाये तो, उनके उदात्त भाव को स्पर्श करती भावना को समझ पाना अति कठिन है। इन केसरिया (शाका) और जौहर ने क्षत्रियों के शौर्य, त्याग, बलिदान के देदीप्यमान ध्येय को स्वर्ण-कलश की शोभा देकर क्षत्रियों के कीर्ति-ध्वज को गगनचुंबी लहराया है।

जौहर और शाका की बात लम्बी करते हुए अवतरण की बात रह जाए तो भी जौहर और शाकों का इतिहास पूरा नहीं होगा और समझ भी नहीं पाएंगे। चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी के चौदह हजार क्षत्राणियों के साथ किए गये जौहर की बात आप जानते ही होंगे। अगर नहीं जानते तो जानकार से समय निकालकर जान लेना। दिल दहल उठेगा। सम्भव है बदलाव आ जाए।

साधक इस अवतरण को–'यह विकराल अग्नि सहस्र जिह्वा हो कलेवा मांगती है' इस वाक्य से शुरू करके हमको आज के समय में जाति के अभ्युदय के लिए कैसा त्याग-बलिदान देना पड़ेगा, इसका अंदाज दे रहा हो, ऐसा समझ में आता है। जौहर के प्रसंग के वर्णन द्वारा आज समर्पित होकर समाज के लिए काम करने वालों को कितना और किस प्रकार का त्याग करना पड़ता है, उसका चित्रण किया गया है। साथ में 'हा क्षात्रधर्म! तू कितना कठोर है' यह जो कहा है तो क्या क्षात्रधर्म क्रूर लगता है? नहीं। हम तो क्षात्रधर्म की छाया के नीचे 'बापु' बनकर बापु कहलाने का आनन्द ले रहे हैं। है न? क्षात्रधर्म का पालन करने का जो बीड़ा उठाते हैं, उन्हें समझ में आएगा कि क्षात्रधर्म कितना कठोर है। हम तो पूर्वजों की कमाई पर जीने वाले क्षत्रिय हैं। इसीलिए क्षात्रधर्म का सही मूल्य शायद समझ में न आए। इसके लिये हम अपनी जाति को बदनसीब गिनें या सदनसीब, यह विचार करें।

सामाजिक क्षेत्र में सामाजिक दुश्मनों फूट, वैर-वैमनस्य, ईर्षा, अहंकार, स्वार्थ, दंभ जैसे शत्रुओं पर विजय पाने से पूर्व ममता पर विजय प्राप्त करना महा कठिन है। यह बात साधक समझते हैं और हमें भी समझाते हैं।

यहाँ समर्पित होने के पथ पर पांव धरने वाले नये साधक को सावधान करते हैं। इस कंटककीर्ण मार्ग पर चलना शुरू करने से पहले माता-पिता, पत्नी, पुत्र, पुत्री, परिवारजन, स्वजन, स्नेहीजन के प्रति प्रेम, लगाव, ममता को धरती में गाड देना होगा। जो यह घाव दिल में ही संग्रहित रखकर समाज का श्रेय करने की बात पुकारते हुए निकलेंगे तो संभव है डगमगा जाएंगे, थक जाएंगे, हार जाएंगे। समाज श्रेय के बहाने स्वश्रेय का छुपा हुआ मनोरथ पूर्ण करने के लिये दंभी बनकर प्रदर्शनीय कार्यों में अटक जाएंगे, खो जाएंगे, फंस जाएंगे। समाज को उज्ज्वल करने के बदले सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये समाज में अविश्वास जगाने का घोर पाप करके स्व और समाज का अहित कर बैठेंगे।

साधक इसीलिए कहते हैं-'साधको! समझो इस सत्य को अभी से'। अर्थात् समझदारी पूर्वक, निष्ठापूर्वक और सम्पूर्ण समर्पण भाव से कर्मक्षेत्र में उतरेंगे तो सफलता, विजय निश्चित है। हमारे में समझदारी, निष्ठा, समर्पणभाव जगाने के लिये परम कृपालु परमेश्वर को प्रार्थना करें।

अर्क- ममता मन का रोग है, समता आत्मा का आरोग्य है।

अवतरण-74

वीर-सज्जा से सुज्जित मैं, अन्तिम वेला में अपने गाँव के दर्शन तो कर लूँ! अरे, यह क्या? स्वजनों के मोहपाश को तोड़ने के उपरान्त भी ये गाँव के स्थूल भवन, मूक पेड़ और वक्र मार्ग मुझे बलात् अपनी ओर खींच रहे हैं। वह देखो, मेरे गाँव की उन्नत शोभा पहाड़ी, जहाँ मेरे जीवन की असंख्य मधुर बाल-स्मृतियाँ बिखरी पड़ी हैं। वह बालू रेत का टीबा आत्मीयता के अकाट्य बन्धन में मुझे पुन: बाँध रहा है। मेरी छत पर नृत्य करने वाला मयूर मेरे ही विरह में रो रहा है। 'ऊहँ! ऊहँ!' करके कृतज्ञता की पूँछ हिलाता हुआ मेरा जांगिड़ा तो पैरों पर ही लेट गया। इसे ठोकर मारकर कैसे बढ़ूँ? हे विराट पुरुष की शक्ति माया! मुझे जीतने का प्रयास मत कर, मैं हठव्रती साधक हूँ।

गाँव की भूगोल मोर और मोरिया।
सबकी माया छोड़कर हठव्रती साधक आया।।

साधक की शुरुआत 'वीर-सज्जा से सुसज्जित मैं' वाक्य से करते हैं। यह वाक्य कुछ-कुछ कह जाता है, गंभीरता से सोचें तो। आज के इस भोगवादी और स्वार्थी युग में निस्वार्थभाव से निष्ठापूर्वक समाज के लिए, धर्म के लिए, संस्कृति के लिए माता-पिता, पत्नी, बच्चों की जिम्मेवारी गौण मानकर काम करना, यह कोई छोटी बात नहीं है। बड़ा पराक्रम है। दृढ संकल्प धारी वीर ही यह जिम्मेवारी वहन करके, समाज कार्य को वरीयता देकर, अग्रता देकर कर्तव्य राह में आगे बढ़ सकते हैं।

प्राकृतिक संकट, आफतें, प्राकृतिक प्रलोभन, आकर्षणों, माता-पिता की अपनी जिम्मेवारी गौण मानकर, उसे दूसरे क्रम पर रखकर, पत्नी, बच्चे, परिवार की माया, ममता, मोह, स्नेह को अन्तर की गइराई में गाडकर साधक सामाजिक क्षेत्र में प्रवृत होने के लिए अपने गाँव से निकलते समय, गाँव की गलियों, वृक्षों, पालतु पशु-पक्षियों एवं नदी, अटारियों, जहाँ उसने अपना बचपन बिताया है, उसके प्रति दिल में कैसे भाव उमड़ते हैं, उसके सुन्दर वर्णन के साथ जड़-चेतन के प्रति लगाव से चिंतातुर है। उसके रोज का साथी मोर उसके विरह में रो रहा है, ऐसी कल्पना की है। इसके साथ-साथ जब उसका पालतु कुत्ता उसके पाँवों में गिरता है, यह दिल हिला देने वाला दृश्य है। सोचता है-यह सब छोड़कर, इनको ठोकर मारकर कैसे आगे बढ़ूं?

पशु-पक्षियों के प्रति प्रेम, लगाव या माया समझने के लिये उनके साथ निकटता, आत्मीयता बनानी पड़ती है। जिसके दिल में प्रेम, लगाव और दिल की माया हो वह मनुष्य पशु-पक्षी का सच्चा भाव और लगाव अच्छी तरह समझ सकता है। कोई मोर के साथ स्नेह की गांठ बांधकर मित्रता करेंगे तो उनका हमारी ओर का भाव समझ सकेंगे। यह विषय बातों का, कोरी कल्पना या चर्चा का नहीं है। अनुभूति का है।

साधक सोचता है, इतने त्याग के बाद यह नया

प्रलोभन क्यों मुझे विलोड़ित करता है, रोकता है? उस समय साधक सावधान बनकर कहता है-'हे विराट पुरुष की शक्ति माया! मुझे जीतने का प्रयास मत कर, मैं हठव्रती साधक हूँ।' ऐसी सभी माया पार करने के लिए संकल्पबद्ध होने के साथ-साथ हठव्रती होना भी आवश्यक है।

इस अवतरण द्वारा साधक समाज को जो संदेश देना चाहता है, उसे समाज के प्रत्येक व्यक्ति, सामाजिक कार्यकर्ता, अग्रणी और नेताओं को समझने का प्रयास करना चाहिए। जिस समाज के पास, राष्ट्र के पास जितने अधिक दृढ संकल्पी और हठव्रती व्यक्ति होंगे, उतना ही वह समाज और राष्ट्र मजबूत, बलवान और समृद्ध होगा। हमारा समाज मजबूत, बलवान या समृद्ध है या नहीं, यह जानने के लिए समाज में दृढ संकल्पी, दृढव्रती लोग कितने हैं, उससे अंदाजा लगाया जा सकता है।

एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। मार्च माह में पू. गंगा सती जी की स्मृति में समढीयाला गाँव में मोरारी बापु की रामकथा थी। एक दिन एक अध्यापक ने चिट्ठी भेजी। बापु! मैंने अंदाजे से निष्कर्ष निकाला है कि आपकी कथा में 50% लोग खाना खाने आते हैं, 25% परिचित, पहचान वाले और भक्त आते हैं और 25% वास्तव में सुनने वाले आते होंगे।

यह बात इसलिए याद आई कि हमारे समाज में भी कोई अध्यापक गिनती करे कि समाज में कितने दृढ संकल्पी, हठव्रती और समाज प्रेमी लोग हैं, कितने डींग हांकने वाले, मतलबी, स्वार्थी और समाज का नाम बदनाम करके कुछ प्राप्त करने की वृति वाले लोग हैं, तो थोड़ा अंदाजा आ सकता है। जैसे कथा में यदि 25% कथा सुनने वाले हों तो भी कथा सफल गिनी जाती है वेसे हमारे समाज में मात्र 10% लोग भी सामाजिक क्षेत्र में काम करने के लिये दृढ संकल्पी और हठव्रती मिल जाएँ तो क्षत्रिय समाज सद्भागी, शक्तिशाली और शासन करने का अधिकारी है, ऐसा मानने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

दृढ संकल्पी और दृढव्रती बनने के लिए त्यागी, तपस्वी, साधु, साधक या योगी के सतत सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त होगा, तभी ऐसे गुण अन्तर में उगेंगे, विकसित होंगे और फलेंगे-फूलेंगे। हमारे समाज को ऐसा सौभाग्य परमेश्वर की ओर से प्राप्त हो, ऐसी सामुहिक प्रार्थना करें।

अर्क- वीर भोग्या वसुंधरा।

अवतरण-75

राष्ट्र-यज्ञ की ज्वाला क्षीण पड़ती जा रही है। तो क्या पूर्वजों की सब आहुतियाँ व्यर्थ ही जायेंगी? नहीं। इस यज्ञ की महान परम्परा को जीवित रखना है। मैं पहले अपने जीवन की आहुति दूँगा इसमें, सर्वस्व को इसकी वेदी पर चढाऊँगा। हे मुख्याचार्य महाकाल! कितने मुण्डों की और आवश्यकता है- समर्पण करता हूँ अभी। पर शीघ्रता करूँ, कहीं इसकी अन्तिम चिन्गारी भी नि:शेष न हो जाए।

राष्ट्र यज्ञ की ज्वाला, रखने जलती।
सर्व प्रथम मैं दूं, प्राण की आहुति।।

गत अवतरणों में हमने साधक की यात्रा में अवरोधक बल, संकटों, यातनाओं, प्रलोभनों, प्राकृतिक अड़चनों वगैरह को पार करके, पारिवारिक कर्तव्य, प्रेम, लगाव, जिम्मेवारियों को सामाजिक जिम्मेवारी के सामने गौण मानकर, उपेक्षा करते हुए; अंत में गाँव, पशु-पक्षियों के प्रति ममत्व, माया को ठोकर मारकर आगे बढते समय साधक को कहते सुना कि सभी को ठोकर मारकर मैं कैसे आगे बढ़ूं? उस समय विश्व रचयिता को विनम्र भाव से कहता है-'हे विराट पुरुष की शक्तिमाया! मुझे जीतने का प्रयास मत कर, मैं हठव्रती साधक हूँ।'

ऐसा हठव्रती साधक समाज, धर्म, राष्ट्र के लिए सर्वस्व को त्याग कर कार्यक्षेत्र में आगे बढते हुए जो स्थिति, हालात, संयोग और परिस्थिति देखता है, उसे इस अवतरण में-'राष्ट्र यज्ञ की ज्वाला क्षीण पड़ती जा रही है। तो क्या पूर्वजों की सब आहुतियाँ व्यर्थ ही जायेंगी?' वाक्य से शुरू करके हमको राष्ट्र, यज्ञ, इस यज्ञ की आहुति के बारे में बहुत कुछ समझाना चाहते हैं, ऐसा मानकर अवतरण के बारे में चर्चा करने से पूर्व इस अवतरण के

साथ सम्बन्ध रखती स्व. पूज्य तनसिंहजी की सहगान की पंक्ति को समझेंगे तो अवतरण की चर्चा सरल बनेगी। समझने में कम मुसीबत आयेगी।

लाखों चढे थे शमा पर किन्तु बुझने न दी यह ज्योति।
बलिदानों की ये कथाएँ बातों में ना तुम भुलाना।।

यह अवतरण और उपरोक्त पंक्तियाँ एक दूसरे के पूरक हों, ऐसा लग रहा है। हम व्यवहार में धर्म के नाम पर, अध्यात्म के नाम पर जो यज्ञ करते हैं, उसमें सामान्य रूप से घी, हवन सामग्री, औषधि और समिधा की आहुति देते हैं। इसलिए हमको इस राष्ट्र-यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियों का कम ख्याल आता है। इस राष्ट्र-यज्ञ में कोई भौतिक पदार्थों की आहुति नहीं देनी है। इस यज्ञ में प्राण की आहुति देनी होती है। क्षीण होती हुई ज्वालाओं को देखकर साधक कहते हैं-'क्या पूर्वजों की सब आहुतियाँ व्यर्थ ही जायेंगी?' यह बात हमारी समझ में उतरनी मुश्किल है। आज हम स्वार्थी, भोगवादी, व्यक्तिवादी बन बैठे हैं। राष्ट्र और समाज गौण बन गया है। इसीलिए राष्ट्रीय स्तर या सामाजिक स्तर की सोच के लिए हमारे पास समय का अभाव है।

इस अवतरण तथा सहगान की पंक्तियाँ क्षात्रधर्म का महत्त्व, उसकी आवश्यकता के साथ क्षात्रधर्म की नींव, त्याग, बलिदान, समर्पण को समझाते हैं। हमारी जाति को क्षत्रिय के रूप में पहचान देने का हम गौरव करते हैं किन्तु क्षात्रधर्म के आधार रूप गुण तप, त्याग, बलिदान, समर्पण भाव से दूर रहते हैं। यह परम्परा लगभग तीन-चार सौ वर्षों से तथा अंग्रेज आए तब से हमने छोड़ रखी है। या ये उत्तम गुण, क्षात्रत्व की शोभा (शृंगार) हमको छोड़ चले हैं। अंग्रेज शासन या अन्य किसी को दोष देने की बजाए आत्मखोज, आत्म निरीक्षण करने की आवश्यकता है, ऐसा लग रहा है।

जिस जाति ने वीरता, उदारता, तप, त्याग, बलिदान, समर्पण में विश्व विक्रम सृजन किया है, उस जाति के वंशजों में से ये गुण अदृश्य कैसे हुए? उसके उत्तर के लिए इतिहास के पन्ने पलटने पड़ेंगे। अपने भव्य, अद्‌भुत इतिहास की थोड़ी स्मृति ताजा कर लें। एक हजार वर्ष तक हमारे पूर्वजों ने विधर्मियों के सामने, दुश्मन के सामने लड़कर राष्ट्र-यज्ञ की ज्वालाओं को अपने प्राणों की आहुति देकर प्रज्वलित रखा। यह ज्वाला साधक को आज क्षीण होती हुई दिखाई देती है। हम भौतिक यज्ञ में भी आहुति देना बन्द कर दें तो ज्वाला शान्त हो जाती है। वैसे ही राष्ट्र-यज्ञ में भी प्राणों की आहुतियाँ देना बन्द हो जावे तो राष्ट्र-यज्ञ की परम्परा बन्द हो जाएगी। पीढियों से हम बलिदान का सिलसिला भूल गए हैं।

इसीलिए साधक कहता है-'क्या पूर्वजों की सब आहुतियाँ व्यर्थ ही जायेंगी?' अर्थात् क्या बलिदान की परम्परा बन्द हो जायेगी? इसका उत्तर साधक ही देता है- 'नहीं'। इस यज्ञ की महान परम्परा को जीवित रखना पड़ेगा। इसके लिये सर्वप्रथम मैं मेरे जीवन की आहुति दूंगा। ये मात्र खोखले शब्द नहीं हैं। साधक ने कर्तव्य पथ पर चलकर अपना जीवन समाज को समर्पित कर दिया था। यही बात पूज्य तनसिंहजी ने दूसरे सहगान की पंक्तियों से हमें समझाने का प्रयास किया हो, ऐसा लग रहा है-

भस्मी में उनके अंगारे हों देखो,
अभी ज्वाला यज्ञों की जलानी है बाकी।

इस राष्ट्र-यज्ञ की ज्वाला क्षीण हो गई है, किन्तु चिनगारी बुझी नहीं है। सद्‌भाग्य से समय-समय पर कोई विरला अपनी स्वयं की आहुति देकर ज्वाला प्रज्वलित कर जाता है। परिणामस्वरूप चिनगारी शेष है। 1994-95 में अहमदाबाद में कौमी हुल्लड़ के समय राणा महेन्द्रसिंह (गेडी) पी.एस.आई. ने अहमदाबाद के पोपटपरा में अपनी जान देकर निराधार (बेसहारा) लोगों को बचा लिया था। गेडी गाँव के आँगन में श्री चुड़ासमा राजपूत समाज ने श्री महेन्द्रसिंह की स्मृति में स्मृति-स्तम्भ की स्थापना की उस समय पोपटपरा गाँव के कुछ युवक शहीद महेन्द्रसिंह के शोक में मुंडन करवा कर कार्यक्रम में उपस्थित रहे। आज भी अगर हम लोगों की इज्जत, सुरक्षा के लिए मरना शुरू करें तो लोग फूलों से बधाई देने को तैयार हैं। हम मौत से डरते नहीं थे तब **दुखी जन के खातिर कृपाणें उठाई**

पंक्ति के अनुसार मौत के सामने छाती भिड़ाकर दुखीजनों को बचाने प्राणों की आहुति देते थे। उसके बदले उस समय ही नहीं आज भी हमें 'बापु' शब्द से सम्बोधित करते हैं। 'बापु' सम्बोधन हमको अच्छा लगता है किन्तु बापु होकर जीने के बजाए पाप बनकर जीने के आज उदाहरण मिलते हैं।

इस अवतरण की चर्चा लम्बी हो जायेगी। पाठक बन्धुओं और मासिक के सम्पादक को बड़ा मन रखकर उदार दिल से क्षमा करने के लिए विनम्र विनती। 'बापु' शब्द राष्ट्र-यज्ञ की वेदी में प्राणों की आहुति देकर ज्वाला प्रज्वलित रखने का परिणाम है। यह बात हमारी आज की मनोदशा में हमको किस रूप में समझ में आवे? कौन समझावे? समझाने वाले कितना ही समझाने का प्रयास करें पर हमारी हालत ऐसी है जैसे आँख, कान बन्द रखकर जी रहे हों। कुछ सुनने, देखने या समझने के लिये तैयार ही नहीं हैं। हमको जगाने, समझाने का कुछ महापुरुषों ने भरपूर प्रयास किया है। उनमें कुछ नाम-स्व. प्रात: स्मरणीय हरभमजी साहेब (मोरवी), स्व. मनुभा बापु (चेर), स्व. हरिसिंहजी (गढुला) और स्व. भाडवा दरबार साहेब चन्द्रसिंह जी मुख्य हैं। उनके साथी-सहयोगियों में अनेक नाम हैं। उनके प्रयास से थोड़ी हलचल देखने को मिली, किन्तु बाद में वही हाल, जैसे सोता हुआ व्यक्ति हा कहकर पुन: ओढकर सो जाता है, वैसी हालत हमारे समग्र क्षत्रिय समाज की है।

समाज की यह हालत बदलने के लिए सामाजिक अग्रणियों के साथ बैठकर, गंभीरता से सोचकर, कोई उपाय ढूंढने की आवश्यकता कुछ भावुक लोग महसूस करते हैं। इसका एक उदाहरण-21.7.2013 को बड़ोदा में श्री क्षत्रिय युवक संघ के कार्यक्रम के बाद अपने प्रतिभावों में श्री लक्ष्मणसिंहजी ने कहा-'ये सभी बातें हमारे समाज के अग्रणियों का तीन दिन का शिविर करके समझाने की आवश्यकता है। यदि कोई ऐसा करने को तैयार हो तो तीन दिन का खर्च देने को मैं तैयार हूँ' किसी के बात गले न उतरे तो उन्होंने अपने मोबाइल नम्बर भी दिए कि बात कर लें। हमारे अग्रणियों को ऐसा विचार प्रेरणा दे, परमेश्वर से सभी प्रार्थना करें।

अभी की हमारी हालात की चिन्ता करने से तो कुछ नहीं होना है, उसके लिये कुछ ठोस कार्य की आवश्यकता है। ऐसा ठोस कार्य वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित चल रहा है। उसकी कुछ जानकारी दूं कि यह राष्ट्र-यज्ञ की ज्वाला बुझ न जाए इसलिए श्री क्षत्रिय युवक संघ बच्चों में, विद्यार्थियों में, युवाओं में, पुरुषों-महिलाओं दोनों में, तप, त्याग, बलिदान, समर्पण का पाठ पढा रहा है। उसके परिणामस्वरूप संघ में ज्यादा तो नहीं कहूं लेकिन कुछ लोग संपूर्ण समर्पण भाव से काम करते हैं। दूसरों को वे इस रास्ते चलने की प्रेरणा देते हैं। शिविर में समाज के लिए, धर्म के लिए, राष्ट्र के लिए त्याग, समर्पण का शिक्षण पद्धति पूर्वक दे रहे हैं। जिसके कारण अनेक युवा, विद्यार्थी संघ प्रवृति के लिए वर्ष में दो-दो माह जैसा लम्बा समय देते हैं। जबकि आज दूसरे लोगों को तो समाज के लिए एक-दो घण्टे देने की तैयारी भी नहीं है। ऐसी स्थिति में वर्ष में 60 दिन समाज के लिए देने को त्याग, बलिदान, समर्पण की संज्ञा न दें तो और क्या कहें?

आज के भारतीय क्षत्रियों की कायरता, कृपणता, कर्मशून्यता और त्याग-बलिदान के क्षेत्र में कंगालियत देखी। तब सौलह-सत्रह वर्ष का किशोर इस नीति को इन रोगों से मुक्त करने का गहन चिन्तन, मनन और मंथन शुरू करता है। इस चिन्तन, मनन और मंथन के फलस्वरूप एक अनमोल उपचार, अमोघ औषध 'श्री क्षत्रिय युवक संघ' समाज को भेंट करता है। 22 दिसम्बर, 1946 के दिन जयपुर में श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति विधिवत प्रारम्भ की। इस प्रवृति द्वारा व्यवस्थित रूप से शिक्षण दिया जा रहा है। 'मेरी साधना' जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं, वह इसी शिक्षण का एक भाग है। हमारे समाज में सामाजिक, धार्मिक, राजकीय क्षेत्र में जो-जो दूषण, कमियाँ, त्रुटियाँ जो समाज के लिये हानिकारक हैं, उन्हें दूर करके क्षात्रत्व को शोभा देने वाले गुण वीरता,

उदारता, परोपकारिता, प्रेम, त्याग, बलिदान और समर्पण भाव को विकसित करने हेतु नियमित, निरन्तर और निश्चित शिक्षण दिया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप शिक्षित, दीक्षित युवाओं में सामाजिक भाव, समाज हित के लिए, धर्म के लिये, राष्ट्रधर्म के लिये, कर्मरत रहने की वृति जन्म लेती है। धीरे-धीरे त्याग, बलिदान और समर्पण भाव विकसित होता है। तभी जब आज लोगों को पल भर की भी फुर्सत नहीं है, ऐसे समय में स्वेच्छा से, इस प्रवृति के विकास के लिये वर्ष में 60 दिन का अपना व्यवसाय, नौकरी या जो भी कार्य करते हैं, उसे छोड़कर समाज के लिए समय देते हैं। यह समर्पण भाव धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही राष्ट्र-यज्ञ की परम्परा को जीवित रखने हेतु अपना सर्वस्व होमने तक पहुँचेगा। श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक, जनक, स्व. पू. तनसिंहजी एक सहगान की पंक्ति में इस बात की साख देते हैं, हृदय में धारणा देते हैं- **फूल खिलेंगे धीरज धरिये, भरिये रस भंडार।**

सत्व और स्वत्व गँवा बैठी हुई जाति को सत्व व स्वत्व प्राप्त करवाने का काम कठिन है। इसीलिए प्रार्थना की एक पंक्ति में कहा है-'साधन की कमी है, कार्य कठिन है'। फिर भी धीरज, निरन्तरता, कार्यकुशलता और उत्साह द्वारा सफलता प्राप्त करनी है। होनी है। खूब लम्बा हो गया है न? लेकिन क्या करूँ? लाचार! मजबूर! इस अवतरण और इसके बाद वाला अवतरण खूब बारीकी से, गंभीरता पूर्वक पढने, सोचने और समझने जैसे हैं। अगर थोड़ा गंभीर बनकर हम ऐसा कर सकें तो।

साधक राष्ट्र-यज्ञ की परम्परा को जीवित रखने को सर्वप्रथम अपने आपका, सर्वस्व बलिदान देने की बात इसीलिए कहते हैं कि देर न हो जाए और चिनगारी बुझ जाने से पहले आहुति देकर उसे प्रज्वलित रखूं। हमारे में ऐसी शुभ भावना जगे इसके लिये ऐसी भावना जगाने में समर्थ सामुहिक प्रार्थना करें। कौम में बलिदान की भावना लुप्त हो गई है यह बात पू. तनसिंहजी के समझ में आ गई थी, इसीलिए बलिदान की विनति करता हुआ एक सहगान भृगुआश्रम आबू में 1960 में लिखा- **ओ जाग मेरे बलिदान, तू दो दिन रहा, कैसे चलता हुआ, अब लौट मेरे मेहमान!** त्याग, बलिदान और समर्पण भाव के बिना क्षात्रत्व पंगु, निर्बल, निर्वीर्य गिना जाता है। ऐसे हीन, सिर्फ कहने मात्र के क्षात्रत्व की समाज में, राष्ट्र में अवहेलना, अवगणना और उपेक्षा होती हुई हम देखते हैं। आज के नामधारी, वेशधारी, वंशधारी क्षत्रियों का कैसा अवमूल्यन हो रहा है? ऐसी स्थिति में क्षत्रिय के लिये जीना अपमानजनक गिना जाता है। इसीलिए उपरोक्त सहगान में पूज्य श्री कहते हैं- **या तो अब लौटो या जीवन यह ले लो, अब जीना हुआ अपमान।**

जब क्षत्रिय समाज में 'अब जीना हुआ अपमान' का भाव जगेगा तब संभव है क्षात्रत्व जगेगा। बलिदान स्वाभाविक गुण बन जाए। पू. तनसिंहजी की विनति को मान देकर बलिदान हमारे अन्तर में बसने अवश्य आयेगा; जब हम कायरता, कृपणता, स्वार्थ को त्यजकर (छोड़कर) उसके स्वागत के लिये हमारे अन्तर के द्वार खुले रखेंगे, तब। आज तो द्वार बन्द रखकर उससे दूर रहने की व्यवस्था में जीते हैं। हमारी सामाजिक संस्थाएँ समाज हित की बहुत अच्छी प्रवृतियाँ करती हैं। सरस्वती सन्मान गलत नहीं है। किन्तु क्षत्रियों के लिये तो वीरता का सन्मान श्रेष्ठ गिना जाता है। कहाँ हैं वीर? यह प्रश्न कदाचित परेशान करता हो तो सद्गत महानुभावों, जिन्होंने समाज के लिए समर्पण किया, समाज को गौरव दिलाया, शहीद हो गए, ऐसे वीरों को, महानुभावों को श्रद्धांजलि रूप जयन्ती निमित्त कार्यक्रम आयोजित करके भावी पीढ़ी को त्याग, बलिदान और समर्पण के पाठ पढाने चाहिए। संस्कार देने चाहिए। इस क्षेत्र में समाज उदासीन है, इतना ही नहीं, पर अगर कहीं ऐसा ध्येयलक्षी, संस्कारलक्षी कार्यक्रम कोई करता हो तो उसकी उपेक्षा करते हैं। ऐसा कार्यक्रम करने की लगन तो है ही नहीं, ऐसे कार्यक्रमों में उपस्थिति देने की भी फर्सत नहीं।

हो सकता है कि हम डरपोक हैं। इसीलिए वीरों को, शहीदों को याद करते हुए भी डरते हैं। इतिहास के पुराने पात्रों की बात छोड़ भी दें, इस युग के वीरों, शहीदों स्व. महेन्द्रसिंह गेड़ी, स्व. रवुभा थलसर और श्री जयेन्द्रसिंह

कारोल के पराक्रम के इतिहास कार्यक्रम द्वारा बच्चों, युवाओं की प्रेरणा के लिए, अनुकरण के लिए न सुना सके। श्री कच्छ काठियावाड़ गुजरात गरासदार एसोसिएशन ने प्रताप जयन्ती के साथ श्री हरभमजी साहेब, स्व. मनुमा चेर, स्व. हरिसिंह जी बापु गढुला और स्व. भाडवा बापु चन्द्रसिंह जी की जयंतियों को जोड़कर पांच विभूतियों की संयुक्त जयंती मनाना शुरू किया है किन्तु प्रतिभाव क्षीण, मंद और निराशाजनक मिलता है। परमशक्ति को प्रार्थना करें कि वे हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करें।

अर्क– सेवा वो कर सकता है, जिसको अपने लिए कुछ भी नहीं चाहिए।

अवतरण–76

सब लोग सुन लें, मैंने एक कसौटी बना ली है मित्रता की। मेरे जीवन की शुभ घड़ियों के सहयोगीगण सावधान हो जाएँ। उन्हें मेरे साथ ही इस साधना–पथ पर ताप, ताड़न, छेदन और घर्षण सहन करना पड़ेगा, मेरे जीवन–ध्येय को आत्मसात करना होगा, जिन्हें स्वीकार नहीं, अभी से पृथक हो जाएँ। साधना की अन्तिम यात्रा के समय उदासीनता और तटस्थता मेरे साथ विश्वावघात होगा।

सरल नहीं है करना क्षात्रधर्म पालन।
सहना पड़ेगा छेदन, घर्षण, ताप ताड़न।।

इस अवतरण की चर्चा साधक और संघ पर्याय शब्द हैं, ऐसा मानकर करते हैं। साधक या संघ सभी लोगों को संदेश देता है कि मैंने मित्रता की एक कसौटी बना ली है। वह कसौटी क्या है? वह कसौटी अवतरण में मात्र चार शब्दों में दर्शायी है–'ताप, ताड़न, छेदन, घर्षण'। इस अवतरण और गत अवतरणों की चर्चा स्थूल दृष्टि से ही की है। सूक्ष्म दृष्टि से चर्चा करने का सामर्थ्य और क्षमता मेरी नहीं है। वह तो कोई विद्वान पुरुष जिसने इस पद्धति को आत्मसात किया हो, वही कर सकता है। इस अवतरण के प्रथम दो शब्द–'सब लोग' को थोड़ा गहराई से सोचें तो ऐसा लगे कि प्रवृति संकुचित स्वार्थी या जातिगत नहीं है। किन्तु यह तो समग्र मानव जाति ही नहीं समस्त जीवों के हित के लिए है, कल्याण के लिये है इसीलिए सभी लोगों को मित्रता की कसौटी का संदेश देते हैं। कोई भी मनुष्य किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना इस प्रवृति में हिस्सा ले सकते हैं। सक्रिय बन सकते हैं। सूक्ष्म रूप से ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

इस प्रवृति में सक्रिय होने वाले को किस–किस प्रकार के संकट, कष्ट सहना पड़ेगा उसका खुलासा चार शब्द–ताप, ताड़न, छेदन और घर्षण द्वारा दे दिया है। अब इन शब्दों के बारे में कल्पना करके हम इस प्रवृति में सक्रिय होने वाले को मुसीबतों, अड़चनों, असुविधाओं और यातनाओं के चित्र की कल्पना कर सकते हैं। क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति शब्द से, वाणी से समझाने का विषय नहीं है। अनुभूति का विषय है। कई विद्वानों के प्रवचन सुनने में आते हैं कि ईश्वर प्राप्ति यह वर्णन का विषय नहीं है। उसका वर्णन नहीं कर सकते, वर्णन से नहीं समझा सकते, यह तो अनुभूति का विषय है। ऐसे ही श्री क्षत्रिय युवक संघ वाणी से या देखने से नहीं समझ में आता। उसकी अनुभूति ही समझा सकती है।

मित्रता की कसौटी में कष्टों के साथ दूसरी और एक कसौटी रखते हैं–'मेरे जीवन ध्येय को आत्मसात करना पड़ेगा।' साधक या संघ का जीवन ध्येय क्या है? जीवन ध्येय है क्षात्रधर्म पालन। श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृति की नींव है क्षात्रधर्म। किन्तु क्षत्रिय समाज की इस बारे में मान्यता और संघ की मान्यता में अन्तर है। हम क्षत्रिय समाज ऐसा मान रहे हैं कि हम क्षत्रिय हैं और हम क्षात्रधर्म का पालन कर रहे हैं। संघ क्षात्रधर्म का बहुत विशाल अर्थ में मूल्यांकन करता है। इस मूल्यांकन का आधार है हमारा इतिहास, हमारे पूर्वजों के कर्म और शास्त्र वचन। इन तीनों का जोड़ है–सत्य, न्याय, नीति, धर्म, राष्ट्र और संस्कृति के रक्षण के लिए असत्य, अन्याय, अनीति, अधर्म तथा राष्ट्र और संस्कृति के दुश्मन के सामने लड़ना और इसी के लिए मरना, यह क्षात्रधर्म है। इसके बारे में ज्यादा चर्चा करने से सामग्री लम्बी हो

(शेष पृष्ठ 29 पर)

गतांक से आगे

महान क्रांतिकारी-राव गोपालसिंह खरवा

- ले. सुरजनसिंह झाझड़, संकलन व सम्पादन-डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा

कांग्रेस से मोह भंग :

राव गोपालसिंह सशस्त्र क्रान्ति द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे। राजनैतिक क्षेत्र में लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। दक्षिण अफ्रीका के नेटाल प्रान्त से आकर गाँधीजी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया, तब भारतीय कांग्रेस में दो दल बन चुके थे। लोकमान्य तिलक के उग्र विचारों को मानने वालों का गरम दल और गाँधीजी की अहिंसक विचारधारा को मानने वालों का नरम दल। गत ढाई हजार वर्षों से केवल एक सैनिक वर्ग को छोड़कर अधिकांश जन अहिंसा धर्म के प्रचार-प्रसार से प्रभावित शान्त वातावरण में रहते हुए, संघर्ष विहीन मार्ग की तरफ अधिक उन्मुख हो चुके थे। लोकमान्य तिलक सन् 1920 में दिवंगत हो चुके थे। परलोक गमन के समय उन्होंने ''यदा यदा ही धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत:- अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।'' कहते हुए शास्त्रोक्त भगवत् अवतरण व पुनर्जन्म में अपने दृढ़ विश्वास को व्यक्त किया था।

सन् 1922 ई. से गाँधीजी की अहिंसात्मक नरम विचारधारा ने कांग्रेसजनों को अत्यधिक प्रभावित किया और धीरे-धीरे सन् 1930 ई. तक भारतीय कांग्रेस केवल गाँधीवादी कांग्रेस बनकर रह गई। उग्रवादी विचार दर्शन को मानने वाले वीर सावरकर, डॉ. मुंजे भाई परमानन्द, लाला लाजपतराय, राव गोपालसिंह खरवा, बारहठ केशरीसिंह कोटा, अर्जुनलाल सेठी जयपुर जैसे तपे हुए त्यागी और तपस्वी क्रान्तिकारी नेता जो अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन की लचीली और नरम नीति में आस्था नहीं रखते थे सन् 1922-23 से ही कांग्रेस से दूर हटते चले गये।

''पूर्वाधुनिक राजस्थान'' के लेखक प्रख्यात इतिहासज्ञ डॉ. रघुवीरसिंह सितामऊ (मालवा) ने इस संदर्भ में लिखा है-''महात्मा गाँधी के बढ़ते हुए प्रभाव और कांग्रेस की नीति में परिवर्तन के साथ ही राजस्थान के राजनीतिक नेता भी बदलने लगे। अपने राजपूत प्रधान विचारों के कारण राव गोपालसिंह को यह नयी राजनीतिक कार्यप्रणाली किसी भी प्रकार रुचिकर न हुई और वह उससे उदासीन हो गया। ''राजस्थान केशरी'' का सम्पादन करने के बाद नीति सम्बन्धी मतभेद होने पर बारहठ केशरीसिंह ने उसका सम्पादन छोड़ दिया।

उन दोनों के साथ ही राजस्थान के समस्त राजपूत समाज तथा उससे सम्बद्ध अन्य सारी योद्धा जातियों का भी प्रान्त तथा देश की इन सब राजनीतिक प्रवृत्तियों से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद हो गया और अब वे राजनीति से बिल्कुल तटस्थ रहने लगे, जिससे आगे चलकर राजस्थान की प्रान्तीय राजनीति में भी कई एक अनुपेक्षणीय उलझनों का उठना सर्वथा अवश्यम्भावी हो गया। बीजोलिया आन्दोलन के बाद राजस्थान में गाँधीवादी नेताओं का महत्त्व बढ़ने लगा, जिससे सन् 1919 ई. के बाद सशस्त्र क्रान्ति के लिये राजस्थान में पुन: कोई विशेष क्रियात्मक प्रयत्न नहीं किए गए। (पूर्वाधुनिक राजस्थान पृष्ठ 196, 197) कांग्रेस को हिन्दू हितों के विपरीत दिशा में जाते देखकर पं. मदनमोहन मालवीय भी उससे हटकर हिन्दू जाति की सेवा में लग गए थे। राव गोपालसिंह की मालवीय जी के प्रति असीम श्रद्धा थी और उसके द्वारा संचालित हिन्दू-हित-साधक कार्यों में वे सदैव उनके समर्थक व सहयोगी बने रहे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय राव साहब ने अपनी आय के अनुरूप सहायता प्रदान की थी। हिन्दू हितों के संरक्षण के लिए हिन्दू सभा जैसी संस्था का होना वे अनिवार्य मानते थे।

हजारों वर्षों से अहिंसा को ही मोक्ष का मार्ग मानते आ रहे हिन्दू समाज में क्षात्रवृत्ति का लोप होकर वैश्यवृत्ति ने जड़ जमा ली थी। भारत की कतिपय सैनिक जातियों को छोड़कर समस्त हिन्दू जाति विकासमान युरोपीय देशों की नजरों में कायर, डरपोक और द्रव्य लोभी मानी जाने लगी थी। राव गोपालसिंह हिन्दू जाति में से क्षात्रधर्म का या सैनिक भावना का ह्रास हो जाने को ही इसका मुख्य कारण मानते थे। वे चाहते थे कि भारत की हिन्दू जाति एक योद्धा सैनिक जाति के रूप में विश्व की अनेक योद्धा जातियों में अग्रणी स्थान प्राप्त करें। इसी प्रकार बीकानेर के महाराजा गंगासिंह व जोधपुर के महाराजा उम्मेदसिंह से भी डॉ. मुंजे को ''हिन्दू सैनिक कॉलेज'' स्थापनार्थ सहायता दिलाने में राव खरवा की प्रमुख भूमिका रही थी। सन् 1929 ई. में हिन्दू महासभा का वार्षिक अधिवेशन महामना मालवीय जी की अध्यक्षता में कानपुर में सम्पन्न हुआ था। उस अधिवेशन में दिया गया राव गोपालसिंह का भाषण एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भविष्यवाणी थी जो 18 वर्ष बाद ही सच्ची साबित हो गई। उक्त भाषण में उन्होंने कांग्रेस की नीति की तीव्र आलोचना करते हुए देश के शीघ्र ही विखंडित होने की आशंका व्यक्त की थी जो सन् 1947 ई. में भारत विभाजन होकर पाकिस्तान बनने के रूप में साकार होकर सामने आई।

काश्मीर में मुस्लिम विद्रोह-राजस्थान केसरी राव गोपालसिंह काश्मीर में- सन् 1931 ई. में पहली बार शेख मोहम्मद ने काश्मीर का बादशाह बनने का स्वप्न देखा। वहाँ के बहुसंख्यक मुसलमानों के धार्मिक उन्माद को भड़काकर उसने काश्मीर के क्षत्रिय महाराजा के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठा लिया। हिन्दू राष्ट्रीयता के समर्थक राव गोपालसिंह भी अपने आत्मत्यागी जत्थे के साथ काश्मीर के लिये चल पड़े। सलेमाबाद मंदिर के घेरे के पश्चात् एक महत् उद्देश्य हेतु रण-मरण का उनका यह दूसरा प्रयास था। लाहोर के हिन्दू-सिख और आर्यसमाजी बन्धुओं ने राव गोपालसिंह का हार्दिक स्वागत किया। काश्मीर में हिन्दू और सिखों के हितों के संरक्षण एवं देखभाल के लिए एक कार्यकारिणी कमेटी का घटन किया गया, जिसके प्रमुख सदस्य पंजाब के प्रसिद्ध नेता भाई परमानन्द, डॉ. गोकुलचन्द नारंग और लोकप्रिय सिख नेता मास्टर तारासिंह थे। पन्द्रह दिनों तक लाहौर में रहकर राव गोपालसिंह खरवा लौट आए। राजस्थान प्रान्तीय हिन्दू सभा ने राव गोपालसिंह के उक्त साहसिक कार्य का सम्मान करते हुए उन्हें ''राजस्थान केसरी'' की उपाधि से अलंकृत किया था। राव गोपालसिंह और मौलाना शौकत अली आमने-सामने, कांग्रेस में गाँधीवादी विचारधारा के प्रवेश के साथ ही राव गोपालसिंह और मौलाना कांग्रेस से अलग हो गए। किन्तु दोनों दिशाएँ विपरीत थी। राव गोपालसिंह हिन्दू सभा की तरफ उन्मुख हुए तो मौलाना मुस्मिल लीग के कट्टर अनुयायी बने।

महाराज सूरतसिंह की मदद। शासन का त्याग एवं पुत्र को उत्तराधिकार और संत संग। सन् 1920 ई. में द्वारिका पीठ के शंकराचार्य जगतगुरु स्वामी त्रिविक्रम तीर्थ अजमेर में काफी समय तक रहे थे। उक्त समय कई बार उनका खरवा आगमन भी हुआ। बीकानेर जाने पर देशनोक के नेड़ी जी स्थान पर तपते थे। अन्य भी अनेक अज्ञात सन्त, ब्रह्मचारी और परमहंस महात्मा रमते राम की भाँति खरवा डाक-बंगले पर चले आते थे जिससे मिलकर राव गोपालसिंह परम आल्हादित हो उठते थे। ऐसे सभी महात्माओं को ईश्वर का रूप मानकर वे हृदय से पूजते थे।

सामाजिक गतिविधियाँ- सामाजिक सुधार के क्षेत्र में राव गोपालसिंह आर्य समाजी विचारधारा से प्रभावित थे। शाहपुरा (मेवाड़) के राजकुमार और बाद के राजाधिराज उम्मेदसिंह आदि के साथ समाज सुधार के कार्यों में हार्दिक सहयोग दिया था। राजपूतों में शिक्षा प्रचार-प्रसार के वे शुरू से ही पक्षपाती थे। राजस्थान क्षत्रिय महासभा से वे हमेशा जुड़े रहे। अजमेर-मेरवाड़ा के क्षत्रिय उन्हें मार्गदर्शक मानते थे। रावत मेहरातों के लिये कार्य किया, मेर और मीणों के उद्गम और विकास के संदर्भ में पुरातत्त्व के अधिकारी विद्वानों ने अनेक शोधूपर्ण लेख लिखे हैं। जब से शाकम्भरी के चौहानों का प्रभुत्व

राजस्थान के इस विस्तृत भू-भाग पर स्थापित हुआ, शाकम्भरी यानि साँभर के चौहान राजा वाक्पतिराज के अनेक पुत्रों में एक लक्ष्मणराज था जो राव लाखण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वि.सं. एक हजार के प्रारम्भिक काल में पिता तथा भाईयों से किसी कारणवश नाराज होकर उसने साँभर त्याग दी और मेर बाहुल्य-इस दुर्गम स्थान पर आकर ''चाँग'' गाँव में रहने लगा। उसने यहाँ रहते हुए एक मेर महिला से विवाह किया। उसकी मेर पत्नी से उत्पन्न पुत्र, पितृ पक्ष से चौहान कुलोदभव होते हुए भी अपने मात्र कुल पक्ष के नाम पर मेरात कहलाया। राव लाखण मेरों की सहायता से गोडवाड़ प्रान्त जीतते हुए नाडोल तक पहुँच गया। नाडोल का स्वतंत्र शासक बनकर वहाँ राज्य करने लगा। कालान्तर में शनैः शनैः उन राजपूत कुलों और वहाँ के आदिवासी मेर क्षत्रियों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुए और उनसे उत्पन्न सन्तानें रावत मैरात के नाम से प्रसिद्ध हुई। भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना वि.सं. (1250-1300) के पश्चात् अधिकांश मेरातों ने जो महारात कहलाते थे, मुस्लिम सम्पर्क के प्रभाव से इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, परन्तु उनमें से जिन लोगों ने हिन्दू धर्म नहीं छोड़ा, उन्होंने अपनी पहिचान अलग बनाए रखने के लिए रावत नाम से अपने को प्रसिद्ध किया। रावत उस काल में राजपूतों की एक शासकीय उपाधि थी। खरवा मेरवाड़ा में स्थित-एक प्रमुख स्थान था। इन रावत-महारातों ने खरवा के शासकों को समय-समय पर सैनिक सहायता दी थी। राव गोपालसिंह ने इस वीर जाति की पतितावस्था को देखा। सन् 1947 ई. में मेरवाड़ा के प्रमुख स्थान सैंदड़ा में होनेवाले रावत-राजपूत सम्मेलन में भाषण करते हुए जोधपुर राज्य के महाराजा हनुवन्तसिंह जी ने कहा था- ''आज से कई वर्ष पूर्व इस महान कार्य को आरम्भ करने वाले स्व. राव गोपालसिंह खरवा को मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, जिन्होंने सर्वप्रथम रावत राजपूतों को अपना पूर्व गौरव स्मरण कराकर उन्हें सच्चा मार्गदर्शन दिया था।'' मेरवाड़ा के रावत-महारात आज भी राव गोपालसिंह जी का नाम श्रद्धा से याद करते हैं।

समाज सेवा व विद्वानों से सम्पर्क- हिन्दू संस्कृति के हिमायती नेताओं और धर्माचार्यों से राव गोपालसिंह का घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहता था। इतिहास के सामयिक मान्य विद्वान महामहोपाध्याय पं. गौरीशंकर औझा, दीवान बहादुर हरविलास, मुंशी देवीप्रसाद जोधपुर, पं. विश्वेश्वर नाथ रेऊ जोधपुर उनके घनिष्ठ मित्रों में थे। **कवियों और साहित्यकारों की दृष्टि में राव गोपालसिंह-** राजस्थान और संयुक्त प्रान्त के अनेक विद्वान, कवि और साहित्यकार राव गोपालसिंह से मिलने आते और सम्मानित होकर जाते थे। मेवाड़, मारवाड़ और ढूंढाड़ के शीर्षस्थ चारण विद्वानों की दृष्टि में राव साहब का स्थान बहुत ऊँचा था। वे उन्हें क्षात्रत्व की प्रतिमूर्ति मानते और उनमें सच्ची राजपूती के दर्शन करते थे। **(क्रमशः)**

शान्त रहने की शिक्षा

महात्माजी भोजन करने बैठे। भोजन में नमक बहुत ज्यादा था। महात्माजी ने शिष्य को एक थप्पड़ जड़ दिया। इतना ज्यादा नमक कैसे डाला? शिष्य शान्त रहा, कल ठीक डालूंगा। दूसरे दिन फिर भोजन करने बैठे और पुन: एक थप्पड़ शिष्य को लगा दिया। गुरुदेव आज थप्पड़ क्यों? आज नमक बराबर है। तीसरे दिन भोजन करने से पूर्व ही एक थप्पड़ शिष्य के लगा दिया और कहा कि सदैव कल की तरह ही नमक डालना। महात्माजी शिष्य को शान्त रहने की सीख दे रहे थे।

सृजन-संहार की मूर्ति

– मृणालिनी साराभाई

भारतीय सभ्यता में, नृत्य जीवन के उच्चतर सत्य की अभिव्यक्ति के प्रबलतम माध्यमों में से रहा है। हमारे यहाँ की प्रत्येक देवमूर्ति अपनी दृश्यमान रूप-भंगिमा में, विश्व के किसी विशेष पहलू को रूपायित करती है। मगर भारतीय मनीषा ने एक साथ ही विज्ञान, कला और धर्म का विस्मयकारी समन्वय जिस एक मूर्ति में संपादित किया है, वह है-नृत्यरत शिव की मूर्ति नटराज।

जब कभी हम नर्तक के रूप में, नृत्य की परिभाषाओं में नटराज की चर्चा करते हैं, तो हमारे मन में अनगिनत संभावनाएँ मचल उठती हैं। हम अनुभव करते हैं कि दक्षिण भारत के प्रसिद्ध मूर्तिकारों की रची हुई इस अमर मूर्ति की नृत्य-मुद्रा द्वारा मानो नटराज हमें शाश्वत प्रज्ञा का दान दे रहे हैं।

इस मूर्ति में निहित गूढ़ अर्थ को स्पष्ट रूप से समझ लेना आवश्यक है-केवल इसीलिए नहीं कि इस प्रतीक का पिछले छः हजार वर्षों से प्रयोग होता आ रहा है, बल्कि इसीलिए भी कि इसका संदेश आज भी हमारे जीवन के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

मूर्ति के ऊपरी दायें हाथ में डमरू है, जो नाद का अर्थात् ब्रह्माण्ड के विकास का प्रतीक है। नाद से ही समस्त भाषाएँ, समस्त संगीत और समस्त ज्ञान निष्पन्न हुआ है। डमरू के तिकोने आकार के दोनों डिंडिम प्रकृति और शक्ति के प्रतीक हैं, जो कि परस्पर मिलकर समस्त सृष्टि-रचना करते हैं। अर्द्धचंद्र की मुद्रा में उठे हुए मूर्ति के ऊपरी बायें हाथ में अग्निशिलाएँ हैं।

शिव के एक हाथ में सृष्टि की आशा और दूसरे में संहारक अग्निशिखा क्यों है? क्योंकि सृष्टि और संहार शिव के स्वरूप के ही दो पहलू हैं। यही दो पहलू हमारे जीवन के भी हैं; क्योंकि जैसे हमारा जन्म निश्चित है, वैसे ही हमारा मरण भी निश्चित है।

तो इसका समाधान क्या है? अभय और शान्ति की अद्भुत मुद्रा में आगे की ओर बढ़ा हुआ दूसरा दायां हाथ हमसे कहता है-''देखो, ईश्वर की कृपा तुम्हें सर्वदा प्राप्त है।'' परमेश्वर का प्रत्येक अवतार या अभिव्यक्ति-चाहे वह शिव हो या कृष्ण, बुद्ध हो या ईसा-इस हस्तमुद्रा का उपयोग करती है, जिसे नृत्य की शास्त्रीय भाषा में अभय-हस्त कहते हैं।

मगर अभी और भी प्रश्न शेष हैं। हम भगवत्-कृपा की उपलब्धि कैसे कर सकते हैं? हम सर्वदा ईश्वर की छत्रछाया कैसे पा सकते हैं? बायां हाथ इस प्रश्न का उत्तर देता है। वह पाँव की ओर इंगित करता हुआ गज-हस्त की मुद्रा में झुका हुआ है। गज-हस्त अर्थात् हाथी की सूंड। यह एक गूढ़तर अर्थ का सूचक है।

हाथी की सूंड विवेकशाली होती है। वह भारी से भारी वस्तु को उठाकर तोड़ सकती है, और सुकुमारतम वस्तु को भी। वह उन दोनों में अन्तर कर सकती है। उसी तरह हमें भी उच्चतर और निम्नतर का विवेक करने में समर्थ होना चाहिए। और इस शुभ कर्म में हमारी सहायता करने के लिए विघ्नविनायक गजवंदन गणेश सर्वदा विराजमान हैं ही।

नटराज का उठा हुआ बायां पैर मनुष्य-जाति से मानो कहता है कि जैसे नर्तक अपना पाँव ऊपर उठाता है, वैसे ही मनुष्य भी अपने आपको ऊपर उठा सकता है और मुक्ति पा सकता है।

नटराज का बायां पाँव ऊपर उठा हुआ है। परन्तु दायां पाँव, जिस पर कि समूचे ब्रह्माण्ड का भार-संतुलन टिका हुआ है और जो नृत्य के इस शाश्वत क्षण में जगत की नियति का अतिसूक्ष्मता से संतुलन किये हुए है, ठोस भूमि पर नहीं, बल्कि एक छटपटाते हुए कुबड़े मनुष्य की पीठ पर है। यह मनुष्य असत् तत्त्वों का मूर्तिमंत रूप है- अज्ञानमय, विस्मृतिमय अपस्मार पुरुष!

यही पुरुष हमारे भीतर है और वह हमें अपनी सच्ची दिव्यता को अधिगत करने से रोकता है। अगर हमें वह परमाह्लाद अर्जित करना है जो हमारा सच्चा स्वरूप है,

यदि हमें वह शाश्वत आनन्द अधिगत करना है जिसे मनुष्य 'ईश्वर' कहता है, तो हमें इस अज्ञान को, अपस्मार पुरुष को निर्ममता से कुचलना होगा।

नटराज के चारों ओर एक प्रभा-मंडल है। यह प्रकृति का नृत्य है, जिसका केन्द्र आत्मा है। इसका उत्स है-स्वयंभू। सब कुछ उसी से नि:सृत होता है और उसी में विलीन।

शिव जब नृत्यरत होते हैं, तो उनका जटाजूट त्रिलोकपावनी गंगा को थामे रहता है, जो कि जीवन की समस्त गतिमयता की प्रेरक शक्ति और मूल स्रोत है और जिसका जल जीवन की समस्त कलुषता को धो डालता है। शिव के उस जटाजूट में सद्य:जात शिशु-सा कोमल, प्राण-प्रतीक बालचंद्र भी अपनी संपूर्ण आत्मा और महिमा बिखेरता हुआ बंधा रहता है।

शायद इस मूर्ति की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है, इस एकांतवासी ध्यानी योगीश्वर का उन्मत्त नर्तक के साथ समन्वय, योगी का कलाकार के साथ समन्वय। नाचते समय नर्तक वही बन जाता है, जिसका वह अभिनय कर रहा होता है। नृत्य करते समय शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की संपूर्ण शक्ति उत्तेजित हो उठती है। तब ईश्वर को समर्पित करने के लिए पृथक कुछ शेष नहीं रह जाता। इस तरह नर्तक एक योगी के समान होता है, जो अपना सर्वस्व परमात्मा को सौंप देता है। यह बड़ी चित्रमय और नाटकीय उपमा है।

परन्तु तनिक नटराज के मुख को तो निहारिये। वह प्रशान्त अंतर्मुखता का सर्वोच्च निदर्शन है। घूर्णमान जगत् की भाँति उनका शरीर उन्माद में आंदोलित है, तथापि स्वयं शिव इस समस्त हलचल में भी सर्वथा निर्विकार और प्रशान्त है। एक साथ मर्त्य जीवन और देवत्व का कैसा सुन्दर निरूपण है!

नटराज का प्रशान्त एवं अविचल मुखड़ा मानो अपनी ही बाह्य सृष्टि-लीला का दर्शक है। वे जगद्गुरु हैं, उनकी चिरंतन आत्मा अलिप्त, सतर्क और करुणामय बनी रहती है।

मूर्तिकला की इस महाकृति में जीवन का रहस्य बड़ी ही सुंदरता से निरूपित है-खुली पुस्तक की तरह सबके लिये स्पष्ट और सुवाच्य। किसी सत्यसंधित्सु को परम सत्य का प्रतीक खोजने के लिए और कहाँ जाने की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है देखने वाली आँखों की।

– संकलित

पृष्ठ 24 का शेष

मेरी साधना

जाएगी, इसलिए थोड़े में समझने की कोशिश करते हैं। क्षत्रिय कोई जातिगत संज्ञा नहीं है। गुणवाचक संज्ञा है। गुण न होने पर संज्ञा लुप्त हो जाती है। उदाहरण के रूप में अग्नि जब तक गर्मी और प्रकाश दे तब तक अग्नि कहलाती है। वह अपना गुण धर्म छोड़ दे तो तुरन्त संज्ञा बदल जाती है, वह राख से सम्बोधित होती है।

संघ में सक्रिय रहने के लिए दो कसौटियाँ हैं। कष्ट सहन करना और संघ के जीवन ध्येय को आत्मसात करना। जिनकी यह तैयारी रहती है वे ही संघ में टिकते हैं। बाकी लोग 'हम आएँगे' कहकर विदाई ले लेते हैं।

अंत में साधक कहते है-'साधना की अन्तिम यात्रा के समय उदासीनता और तटस्थता मेरे साथ विश्वासघात होगा।' इसे समझना कठिन है, फिर भी थोड़ा प्रयास करते हैं। अन्तिम यात्रा अर्थात् निर्णायक घड़ी में सक्रिय रहने की बजाए सैद्धान्तिक या अन्य कोई बहाना ढूंढकर उदासीन रहने या तटस्थता का नाटक करने को विश्वासघात बताया है। इस उदासीनता, तटस्थता और विश्वासघात शब्दों को सच्ची और अच्छी रीति से समझने के लिये ताप, ताड़न, छेदन और घर्षण सहन करने की तैयारी होनी चाहिए।

मेरी साधना के अवतरणों को समझने के लिए समझदारी और वैचारिक बल के साथ समाज-पीड़ा की आवश्यकता रहती है। समझदारी, वैचारिक बल और समाज-पीड़ा के समन्वय से ही ऐसी आवश्यक, गंभीर, तात्विक बातें समझ सकते हैं। विश्व नियंता को वन्दन करके प्रार्थना करें-समझदारी, विचारबल और समाज-पीड़ा का त्रिवेणी संगम हमारे अन्दर उद्भव हो।

अर्क– मृत्यु का भय किसलिए? मृत्यु तो नये जीवन का आरम्भ है। **(क्रमश:)**

निज को न बनाया तो....!

– स्व. सूरतसिंह कालवा

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे जमाना है जमाने से हम नहीं।।

साधकों को, श्री क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवकों को, समर्पित कार्यकर्ताओं को, सदा याद रखना चाहिए कि मन, बुद्धि और खुशामद की वैशाखियाँ लक्ष्य तक पहुँचने में सदा ही बाधक होती हैं, ये वैशाखियाँ बीच राह कभी धोखा दे जाती हैं, जबकि **विवेक** और **धैर्य** की वैशाखी आपको लक्ष्य तक पहुँचाकर आपकी पीठ थपथपाती है, सराहना करती है। फिर तो जमाना भी हमारे साथ हो जाता है, बेदम होकर फिर जमाना हमें रोक नहीं पाता। क्योंकि **विवेक** और **धैर्य** सदा हमारे सहायक होते हैं। वे हमें परस्पर जोड़ते हैं, बिखरने नहीं देते। मन, बुद्धि महत्त्वाकांक्षा को उकसाती प्रोत्साहित करती और हमें बिखेर देती है।

इसलिए ध्यान रहे हथोड़े से ताला टूटता है, खुलता नहीं, चाबी से ताला खुलता है। चाबी कभी कपड़े को जोड़ नहीं सकती, कपड़े को जोड़ने के लिये हथोड़ा नहीं चाबी नहीं, सूई चाहिए। लोहा तो हथोड़े में भी है, चाबी में भी है और सूई में भी है, फर्क यह है कि सूई सूक्ष्म है। मोटी बुद्धि तोड़ती है, मध्यम बुद्धि खोलती है, सूक्ष्म बुद्धि जोड़ती है। आत्मा को आत्मा से जोड़ती है। बुद्धि सूक्ष्म होनी चाहिए बुद्धि सूक्ष्म होती है-आत्मानुभवी महापुरुषों के सत्संग से श्रवण-मनन से।

जगत में कर्म की प्रधानता है, इसलिए हमारे कर्म ऐसे हों, हम कर्म ऐसे करें, कि करने का अहं नहीं, लापरवाही नहीं, वासना नहीं, पक्षपात नहीं, कर्तापन का भाव भी नहीं। कर्म केवल प्रभु की प्रसन्नता के लिए करेंगे तो कर्म **कर्मयोग** बन जाएगा। महापुरुषों द्वारा जो भी क्रियाएँ होती हैं वे सब आदर्श रूप से होती हैं। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग तीनों ही **योगमार्ग** में साधक के लिए, संघ के स्वयंसेवक के लिए, निर्द्वन्द्व होना बहुत ही जरूरी है। द्वन्द्व, विषमता, पक्षपात, ये दुखों के कारण हैं इसलिए भगवान ने द्वन्द्व की स्थिति में ''सम'' (निर्विकार) रहने को ''योग'' कहा है।

निर्द्वन्द्व होने पर साधक कर्म करता हुआ भी संसार में बंधता नहीं द्वन्द्वों में शिक्षक हो या साधक या शिष्य संसार में बँध जाता है। निर्द्वन्द्व होने पर ही साधक दृढव्रती होकर अपने कर्तव्य का पालन करते हुए भगवान के भजन में भी लगा रह सकता है। कर्मों के तत्त्व को ठीक प्रकार जानने से मनुष्य कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाता है। अनुकूल परिस्थितियों में राजी और प्रतिकूल परिस्थितियों में नाराज होना द्वन्द्व ही है। ऐसे द्वन्द्व से परस्पर सम्बन्ध और व्यवहार बिगड़ते हैं। कामना, ममता, आसक्ति, पक्षपात, विषमता, स्वार्थ, अभिमान आदि सब विषरूप हैं, कर्मों में से इस विष को निकाल दें तो कर्म अमृतमय हो जाते हैं। ऐसे अमृतमय कर्म ही ''यज्ञ'' कहलाते हैं। सिद्ध पुरुष ही लोक संग्रह कर सकता है क्योंकि इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं होता।

स्वर्ग, मृत्यु और पाताल इन तीनों लोकों की मर्यादा का वाचक शब्द **''लोक संग्रह''** है। इन तीनों लोकों का स्थायी रखने के लिए कर्म करना **''लोक संग्रह''** है और यह कर्म मनुष्य के अधीन है। जिसे कार्यकर्ता, स्वयंसेवक व अनुयायी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, अपना आदर्श मानते हैं जिसके व्यवहार और आचरण तथा वचन से लोग सन्मार्ग पर चलने को प्रस्तुत होते हैं, प्रोत्साहित होते हैं, और सन्मार्ग पर चलते हैं वही लोक संग्रह कर सकता है। निर्विकार, समभाव के अभाव में संगठन को बिखरते देर नहीं लगती।

सन्देह किया जा रहा है तो उसका व्यवहार अस्वाभाविक हो जाता है। दुख तो होता ही है, दुख तो मौन रहकर भी सहा जा सकता है, नकली मुस्कान का तथाकथित बहादुरों का तरीका तो फूहड़ तरीका है, हर

व्यक्ति अपनी जीवनशैली चुनने को स्वतंत्र है। कल क्या होगा इसे पढने के लिए **विवेक** और **अनुभव** काम आता है, यह कोई दूसरा सिखा नहीं सकता। भविष्य पढने की क्षमता अपने में है तो उस पर टिका रहना चाहिए। वह इन्सान ही क्या जिसके हृदय में अपना कोई **स्वाभिमान** न हो, अपना कोई **संकल्प** ही न हो और अपने संकल्प को क्रियान्वित करने का **पुरुषार्थ** न हो। ध्येय के प्रति **एकाग्रता** अनिवार्य है। **एकाग्रता** की शक्ति का विकास **ध्यान** के बिना नहीं हो सकता, निर्विकार चेतना का विकास नहीं होता और इसके बिना इच्छाओं पर अनुशासन नहीं हो सकता। जब इच्छाओं का युद्ध चलता है तब अनेक इच्छाएँ पैदा हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति या साधक उचित अनुचित का निर्णय नहीं कर पाता। जहाँ इच्छा है वहाँ **विवेक** भी है, विवेक न हो तो इच्छा व्यक्ति को अभिभूत कर देती है। जीवन प्रतिद्वन्द्वी इच्छाओं का रंग मंच है। इच्छा का दमन करना भी एक समस्या है, **दमित इच्छा** भीतर चली जाती है, भीतर अवचेतन मन में पहुँचकर प्रकारान्तर में बार-बार उभरती है। सामान्य उपायों से दमित इच्छाएँ मिटती नहीं, बार-बार उभर कर सामने आती हैं, बार-बार उभरती हैं तो सताती भी हैं। इच्छाएँ सताती हैं तो साधक विचलित होता है, रुक जाता है, ठहर जाता है।

अनुभवी महापुरुष के सानिध्य बिना भावना जाग्रत नहीं हो पाती, दबी रहती है। इसलिए साधक को कभी किसी की नकल नहीं करनी चाहिए, अपना **स्तर** देखना चाहिए कि मैं कहाँ हूँ, फिर जहाँ है, वहाँ से आगे के लिए निरन्तर प्रयास करना चाहिए। नकल चिन्तन-पथ का बहुत बड़ा व्यवधान है। सन्तों की नकल करने से कोई सन्त नहीं हो जाता। सन्त तो सन्त ही होते हैं साधक नहीं होते। साधक को समाज में रहकर समाज को संगठित करना है, लोकसंग्रह करना है तो समाज के रीति-रिवाज, सामाजिक अनुशासन, सामाजिक मर्यादा में रहना चाहिए। सन्त तो कहीं भी पाँव पसार कर बैठ जाता है, अर्द्धनग्न अवस्था में कहीं भी आ जा सकता है, क्या उसकी नकल करनी चाहिए? सन्त तो सन्यासी होता है, उसका समाज ही अलग होता है। सामाजिक व्यक्ति कार्यकर्ता या संगठन कर्ता समाज में रहता है। समाज में रहना है, समाज है, परिवार है, क्षत्रिय परिवारों में आने जाने की अपनी कुछ मर्यादाएँ होती हैं, रिवाज होते हैं। अद्वैत ही एकमात्र दर्शन है जो मनुष्य को उसके अपनेपन की पूर्ण उपलब्धि कराता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की कार्यप्रणाली के अनुसार हमारे समाज की सांसारिक तथा संगठनात्मक व आध्यात्मिक उन्नति हेतु क्षत्रियोचित संस्कारों की शिक्षा के लिए उपयुक्त लोगों को प्रशिक्षित करना। इसमें भाषा क्षत्रियोचित **वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन, आचार व्यवहार** सभी आ जाते हैं। समाज को राह दिखानी है, तो पहले स्वयं अपने भीतर देखना होगा, समाज को बनाना है, तो पहले **स्वयं** को, **निज** को बनाना होगा। साथियों को,संघ से जुड़ने वालों को, सहनशील बनाना है, उन्हें सहनशीलता सिखानी है तो स्वयं को सहना सीखना होगा। प्राणों में उठने वाले अरमानों आकांक्षाओं को संवारना है, जीवन के तारों में उलझी गुत्थियों को सुलझाना है तो सर्वप्रथम स्वयं अपने आपको सुलझाना होगा।

निःसन्देह हमारा लक्ष्य ऊँचा है, महान है और लक्ष्य प्राप्ति के लिए एक ही मार्ग का सहारा लेकर हम ज्योति में ज्योति मिलाने के सपने भी देख रहे हैं तो निर्विवाद रूप से सर्वप्रथम स्वयं को इसके योग्य बनाना ही होगा। दरियादिली रखनी होगी, निष्पक्षता और समभाव अपनाना होगा। किसी भी साधन से हमारे अन्त:करण में समता आनी चाहिए। प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त अनुकूल प्रतिकूल अवस्था में, कर्मों की पूर्ति-अपूर्ति में, मान-अपमान में सम रहना होगा। किसी भी साधन से हमारे अन्त:करण में समता आनी चाहिए। प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त अनुकूल प्रतिकूल अवस्था में, कर्मों की पूर्ति-अपूर्ति में, मान-अपमान में सम रहना होगा। अन्त:करण में समता आए बिना सुख-दुख आदि द्वन्द्वों का असर नहीं मिटेगा और मन भी काम में, ध्यान में नहीं लगेगा। प्रारम्भ स्वयं से होना चाहिए।

धारावाहिक

चित्रकथा–'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

– बृजराजसिंह खरेड़ा

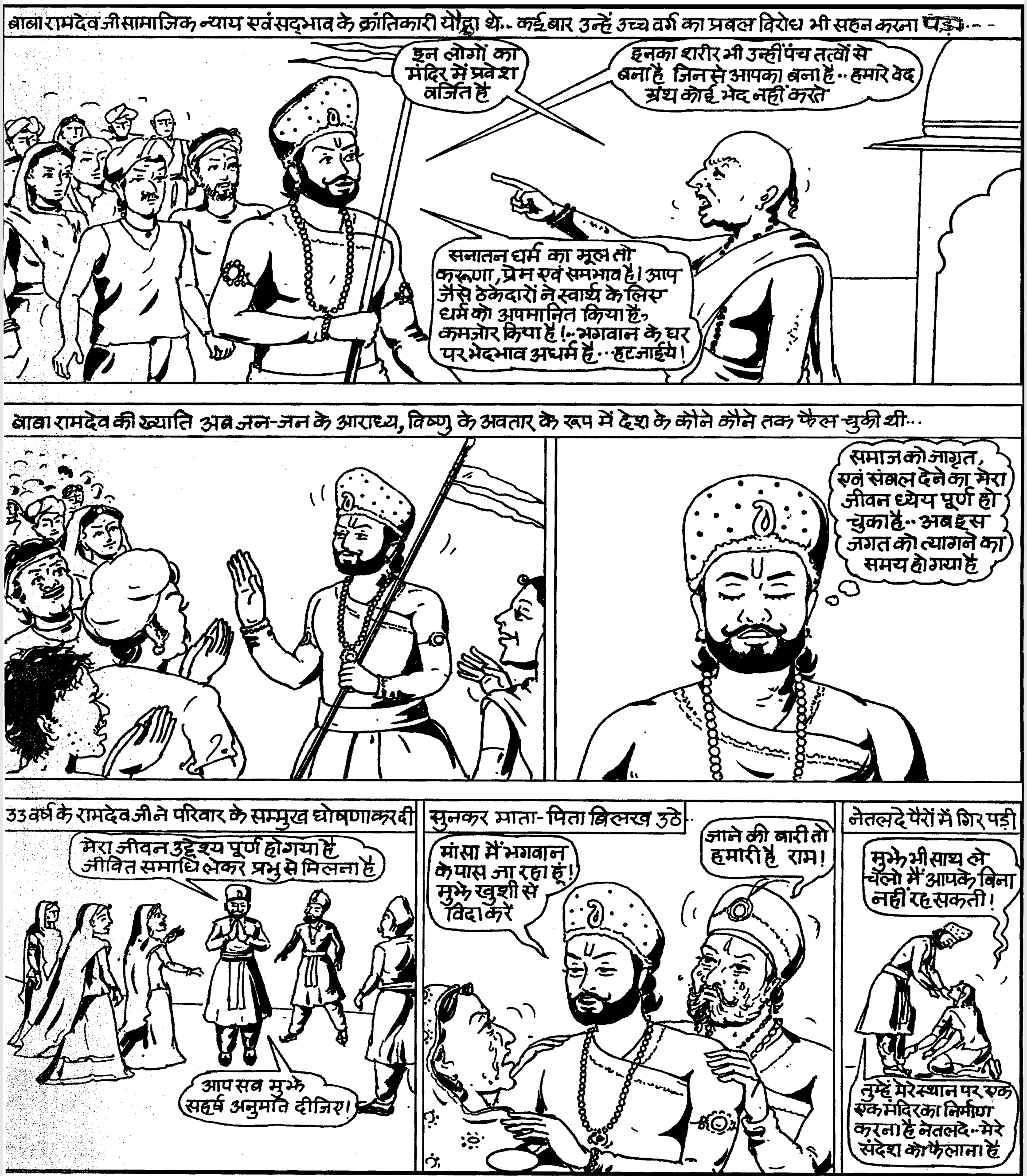

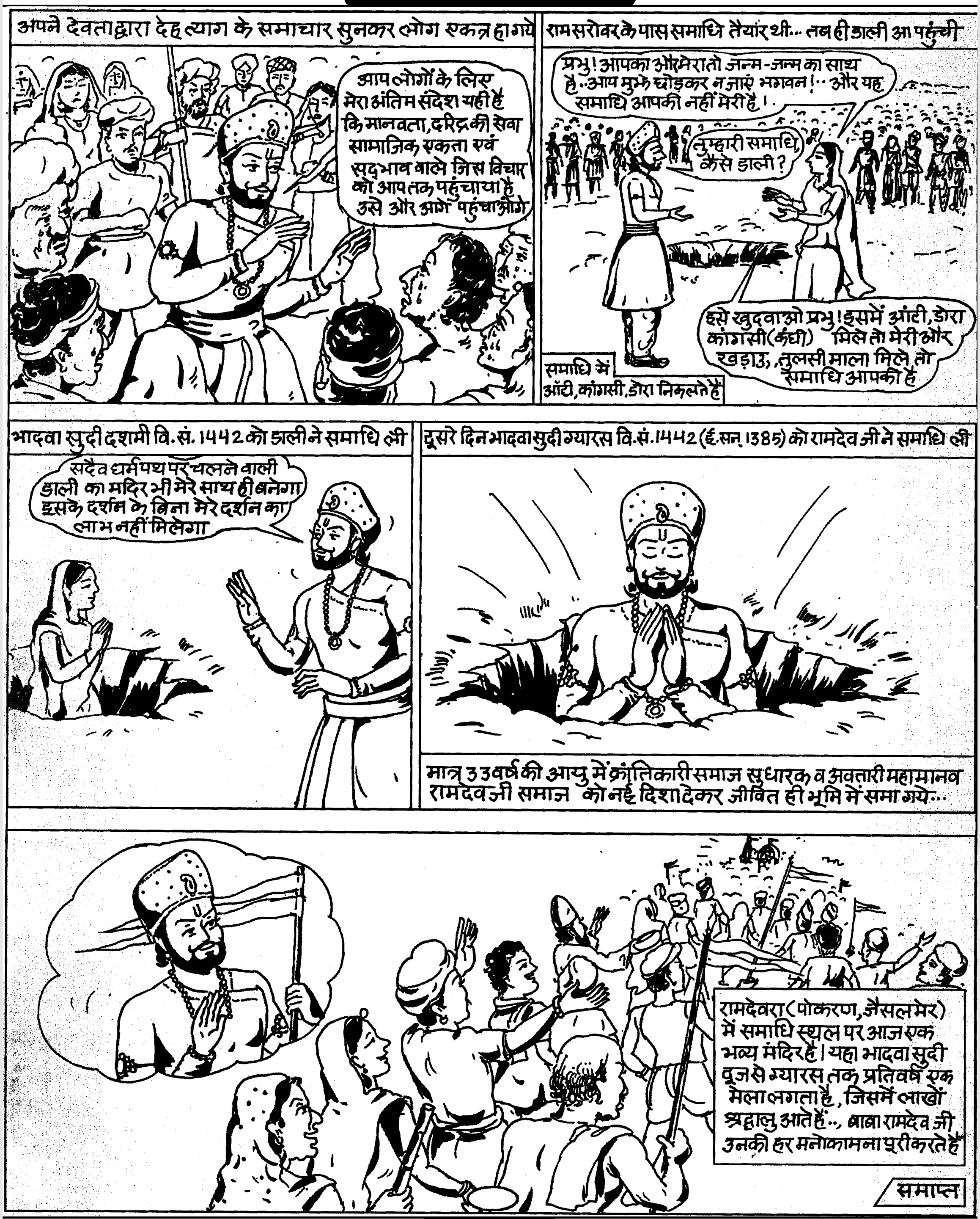
अपने देवता द्वारा देह त्याग के समाचार सुनकर लोग एकत्र हो गये
आप लोगों के लिए मेरा अंतिम संदेश यही है कि मानवता, दरिद्र की सेवा सामाजिक एकता एवं सद्भाव वाले जिस विचार को आप तक पहुंचाया है उसे और आगे पहुंचाओगे
रामसरोवर के पास समाधि तैयार थी... तब ही डाली आ पहुंची
प्रभु! आपका और मेरा तो जन्म-जन्म का साथ है.. आप मुझे छोड़कर न जाएं भगवन!.. और यह समाधि आपकी नहीं मेरी है।
तुम्हारी समाधि, कैसे डाली?
इसे खुदवाओ प्रभु! इसमें आंटी, डोरा कांगसी (कंघी) मिले तो मेरी और खड़ाउ, तुलसी माला मिले तो समाधि आपकी है
समाधि में आँटी, कांगसी, डोरा निकलते हैं
भादवा सुदी दशमी वि.सं. 1442 को डाली ने समाधि ली
सदैव धर्मपथ पर चलने वाली डाली का मंदिर भी मेरे साथ ही बनेगा इसके दर्शन के बिना मेरे दर्शन का लाभ नहीं मिलेगा
दूसरे दिन भादवा सुदी ग्यारस वि.सं. 1442 (ई.सन् 1385) को रामदेव जी ने समाधि ली
मात्र 33 वर्ष की आयु में क्रांतिकारी समाज सुधारक व अवतारी महामानव रामदेवजी समाज को नई दिशा देकर जीवित ही भूमि में समा गये...
रामदेवरा (पोकरण, जैसलमेर) में समाधि स्थल पर आज एक भव्य मंदिर है। यहां भादवा सुदी दूज से ग्यारस तक प्रतिवर्ष एक मेला लगता है, जिसमें लाखों श्रद्धालु आते हैं.., बाबा रामदेव जी उनकी हर मनोकामना पूरी करते हैं
समाप्त

अपनी बात

एक बादशाह की राजधानी में सवारी निकली। चौराहे पर खड़ा एक आदमी बादशाह को गाली देने लगा। उस आदमी को पकड़ कर बन्द करना दिया गया और दूसरे दिन बादशाह के सामने लाया गया। बादशाह ने पूछा,-तुमने मुझे गालियाँ किसलिए दी? मुझे तो याद नहीं आ रहा कि मेरे द्वारा तेरा कुछ बुरा हुआ हो। फिर तुमने क्यों गालियाँ दी मुझे। उस आदमी ने कहा-क्षमा करें, मैं शराब पिए हुआ था, मैं अपने होश में नहीं था तो जिसने आपको गालियाँ दीं वह दूसरा ही आदमी था। आप मुझसे पूछताछ न करें। जिसने आपको गालियाँ दी वह दूसरा ही आदमी था, वह बेहोश था। मैं होश में हूँ, मैं आपके पैर छूना चाहता हूँ। आपको नमस्कार करना चाहता हूँ। वह गालियाँ आपको मैंने नहीं दी, वह दूसरा ही आदमी रहा होगा अब तो मेरा होश वापस आ चुका है। जो मैंने बेहोशी में किया है वह मैं होश में नहीं कर सकता हूँ।

कोई आदमी जो बेहोशी में करता है, होश में नहीं कर सकता है। अगर भीतर चित्त पूरा होश से भर जाए तो हमारा सारा जीवन बदल जाएगा। आज तक कोई आदमी होश पूर्वक क्रोध नहीं कर सका है, हम भी नहीं कर सकेंगे। कोशिश करके देखें। क्रोध आ रहा हो और आप होशपूर्वक क्रोध करके देखें कि पूरे बोध से भरूं कि यह क्रोध आ रहा है और मैं क्रोध कर रहा हूँ। आप पाएंगे जिस मात्रा में यह बोध होगा उसी मात्रा में क्रोध मंदा और धीमा हो जाएगा।

जीवन में यह एक अद्‌भुत रहस्य की बात है। अगर हम चित्त के प्रति होश से भर जाएँ तो न तो क्रोध संभव है, न घृणा सम्भव है। अगर हम चित्त के प्रति होश से भर जाएँ तो क्षमा अनायास ही सम्भव हो जाती है, प्रेम अनायास प्रवाहित होता है। ये लक्षण हैं-बेहोशी का लक्षण है क्रोध, घृणा, मोह। होश का लक्षण है प्रेम, सत्य, अमोह, क्षमा। आप क्रोध को क्षमा में नहीं बदल सकते। लेकिन, बेहोशी अगर होश में बदल जाए तो क्रोध अपने आप क्षमा में बदल जाता है। क्रोध से क्षमा के लिए और कोई सीधा रास्ता नहीं है। लेकिन बेहोशी से होश की तरफ सीधा रास्ता है।

कैसे हम जाग जाएँ? इस जागरण के लिए पहली बात यह जानना जरूरी है कि हम यंत्र हैं और सोए हुए हैं, क्योंकि वही आदमी जाग सकता है जो पहले अच्छी तरह से यह समझ ले कि मैं सोया हुआ हूँ। क्योंकि जिसको यह भ्रम है कि मैं जागा ही हुआ हूँ वह जागेगा कैसे? इसलिए यह पहले स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ जाना चाहिए कि हम बेहोश हैं तो शायद इस बेहोशी की पीड़ा से ही हमारे भीतर जागरण का क्रम शुरू हो।

कभी हमने ख्याल किया है, रात में हम सपना देखते हैं तो हमको पता नहीं चलता है कि हम सपना देख रहे हैं। हमको लगता है जो देख रहे हैं वह सच है। सुबह जागने पर पता चलता है कि जो देखा वह सपना था और सच नहीं था। लेकिन सपने में तो सपना सच ही मालूम होता है। अभी हम जिस हालत में हैं, मालूम होता है यह सच है। पता नहीं चलता कि यह झूठ है। पता न चलने का कारण यह भी है कि हमारे आसपास जितने लोग हैं वे भी उसी हालत में हैं। अत: ऐसा लगता है कि मनुष्य की यह जो सामान्य स्थिति है, यही जागरण है। हम सभी लोग एक जैसे हैं। अगर एक आदमी हमारे भीतर आ जाए जो जागा हुआ हो तो उसकी हत्या करने को तत्पर हो जाएंगे। जीसस क्राइस्ट को सूली पर लटकाया है, सुकरात को जहर दिया है। क्यों? ऐसा मानकर कि ये गड़बड़ आदमी हैं। यह हमारे बीच का नहीं है। हम सारे लोग क्योंकि एक जैसे हैं-जब एक ही बीमारी सब लोगों को हो जाए तो बीमारी का पता नहीं चलता। उसी को सामान्य स्थिति मान लेते हैं, बीमारी का कोई पता नहीं चलता।

इस स्थिति में परिवर्तन का एक ही उपाय है कि, चित्त के प्रति होश को जगाएँ। जरा देखें कि सारा जीवन तो सोया-सोया यांत्रिक है इसमें मैं कहाँ हूँ? इसमें होश कहाँ है? जो मैं कर रहा हूँ वह क्या सच जानकर कर रहा हूँ? यह तो हो रहा है। इस करने का मालिक मैं हूँ? यह बोध आ जाए तो होश की किरण फूट रही है, जागरण शुरू हो गया है। संघ इसीलिए आत्मावलोकन पर जोर देता है। ❑

श्री **देवेन्द्र सिंह जी बाज्यास** को नगर निगम अजमेर के वार्ड 38 से **पार्षद** बनने पर हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं।

शुभेच्छु :- विजयराज सिंह जालिया, भँवर सिंह बेमला, नरेन्द्र सिंह नरधारी, वदन सिंह गेंहूवाड़ा, अरविंद सिंह गेंहूवाड़ा, भगवान सिंह देवगांव, छुट्टन सिंह दाबड़दुम्बा दिलीप सिंह रूद, जीवन सिंह नरधारी, गुमान सिंह वालाई

श्री क्षत्रिय युवक संघ के **हीरक जयन्ती वर्ष** के उपलक्ष्य में सभी समाज बन्धुओं को हार्दिक बधाई।

जितेन्द्र सिंह देवली

श्री क्षत्रिय युवक संघ के
हीरक जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में
सभी समाज बन्धुओं को
हार्दिक बधाई।

IAS / RAS
तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड
Spring Board
Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur
Website : www.springboardindia.org

अप्रेल, सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 04

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्..

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह